उपदेश-रत्न-माला

अर्थात्

महाराज भर्तृहरि आदि प्रसिद्ध नीतिवेत्ताओं की उपयोगी
नीतियों का सरल भाषा में सार-संग्रह

संग्रहकर्त्ता

चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्म्मा

"पुत्राश्च विविधैः शीलैर्नियोज्याः सततं बुधैः
नीतिज्ञाः शील सम्पन्ना भवन्ति कुल पूजिताः ॥"

—नीति-प्रबोधः

प्रकाशक

रामनरायन लाल, बुकसेलर,
इलाहाबाद.

१९२०

[चतुर्थ संस्करण]

बालकबालिकाओं के लिये

हिन्दी की पढ़ने योग्य सचित्र पुस्तकें

१—आरब्योपन्यास, प्रथम भाग (सचित्र) ॥=)
२—आरब्योपन्यास, दूसरा भाग (सचित्र) ॥=)
३—श्रीमद्भागवत संग्रह (सचित्र) ॥=)
४—रामायणीय संग्रह (सचित्र) ॥=)
५—संक्षिप्त मनुस्मृति ।−)
६—संक्षिप्त विष्णुपुराण ॥=)
७—सच्ची मनोहर कहानियाँ ॥=)
८—उपदेशरत्नमाला ।−)
९—संक्षिप्त पाराशर स्मृति ।−)
१०—आश्चर्य सतदशी ।−)
११—ग्रीस और रोम की दन्तकथाएँ ।−)
१२—संक्षिप्त मार्कण्डेय पुराण ।−)
१३—हिन्दी महाभारत, प्रथम खण्ड ॥=)
१४— " द्वितीय खण्ड ॥=)
१५—भारतीय उपाख्यान माला, प्रथम खण्ड ॥=)
१६—भारतीय उपाख्यान माला, द्वितीय खण्ड ॥=)
१७—सरल पत्र-बोध ।−)
१८—संक्षिप्त कल्कि-पुराण ।−)
१९—शिष्टाचार पद्धति ।−)
२०—हिन्दी निबन्ध शिक्षा ॥=)
२१—भाषा हितोपदेश ।−)
२२—दस कुमारों का वृत्तान्त ।−)
२३—नाटकीय कथा ।−)
२४—हिन्दी व्याकरण शिक्षा ॥=)
२५—याज्ञवल्क्य स्मृतिसार ।−)
२६—आदर्श महात्मागण, प्रथमभाग ॥=)
२७—आदर्श महात्मागण, द्वितीयभाग ॥=)
२८—श्रीमद्भागवद्गीतार्थ संग्रह ।−)
२९—उपासना कल्पद्रुम ।−)
३०—पौराणिक उपाख्यान, प्रथमखण्ड ॥=)
३१—पौराणिकउपाख्यान, द्वितीयखण्ड ॥=)
३२—हिन्दू तीर्थ ॥)
३३—संक्षिप्त मार्कण्डेय पुराण उत्तरार्द्ध ।−)
३४—हिन्दी महाभारत जिल्ददार (सचित्र) अठारहों पर्व सहित १।)
३५—भारतीय उपाख्यान माला (सचित्र) जिल्ददार १।)
३६—पौराणिक उपाख्यान सम्पूर्ण १।)
३७—राबिन्सन क्रूसो (सचित्र) १)
३८—हिन्दी पद्य-संग्रह ॥=)
३९—शब्दार्थ पारिजात (कोष) २)
४०—श्रीकृष्ण कथा (सचित्र) १)
४१—श्रीराम कथा (सचित्र) १)
४२—हिन्दी गुटका कोष १॥)

रामनारायण लाल, बुकसेलर, इलाहाबाद

उपहार

प्यारे बालक और प्यारे बालिकाओ! इस संसार में लोगों के साथ बर्ताव करने की रीति जानने के लिये, नीतिवेत्ताओं ने, नीति बनायी है। इस छोटी सी पुस्तक में, उन उपयोगी नीति-वाक्यों का सार, हमने तुम्हारे लिये ही संग्रह कर दिया है। क्योंकि हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम तुम्हें नीति जानने वाले बनावें, जिससे तुम लोग इस संसार में सफल-मनोरथ हो कर, सानन्द जीवन व्यतीत करो। इस लिये "बालकोपयोगी-पुस्तक-माला" का यह आठवाँ अङ्क हम सहर्ष तुम्हें उपहार में देते हैं।

संग्रहकर्त्ता

भूमिका

—:०:—

"बालकोपयोगी-पुस्तकमाला" का यह आठवाँ अङ्क है। इसका नाम हमने "उपदेश-रत्न-माला" इसलिये रखा है कि इसमें चुन चुन कर हमने ऐसे उपदेशों का संग्रह किया है, जिन्हें प्रसिद्ध अनुभवी माहात्माओं की कठिन जीवन तपस्या का फल कहना अन्यथा न होगा।

इस पुस्तक को हमने तीन खण्डों में बाँट दिया है। हमने प्रथम खण्ड में भर्त्तृ हरि जी के प्रसिद्ध नीति और वैराग्य शतकों के चुने चुने श्लोकों का सरल भाषा में भावार्थ दिया है।

द्वितीय खण्ड में महात्माओं के वाक्यों में, "ईश्वर" "उनकी भक्ति" आदि कठिन विषय, अत्यन्त सरल रीति से समझा दिये हैं। इस खण्ड के अन्त में हमने कुछ "हानिकारी कहावतें भी दी हैं, जिनके प्रचार से समाज में आलस्य, अकर्मण्यता और क्रूरता बढ़ती चली जाती है।

१ महाराज भर्त्तृहरि पौराणिक राजा नहीं हैं। इतिहास-वेत्ता उन्हें महाराज विक्रमादित्य का भाई बतलाते हैं। असल में महाराज भर्त्तृहरि एक प्रचण्ड वैयाकरणी हुए हैं। उनका बनाया एक व्याकरण भी है। उनके "वाक्यप्रदीप" का विद्वानों में बहुत आदर है। विद्वान् लोग इस प्रदीप की कारिकाओं "प्राय: हरिकारिका" के नाम से उद्धृत किया करते हैं। इन कारिकाओं का आदर पाणिनी के सूत्रों से कम नहीं है। किन्तु इनके बनाये तीन शतक, इनके "वाक्यप्रदीप" से अधिक प्रसिद्ध और प्रचलित हैं। इनके होना, ईसा के किसी पूर्व शताब्दी में बतलाया जाता है।

तृतीय खण्ड में ऐसे बढ़िया उपदेश और प्रबोध—वाक्य उद्धृत किये गये हैं कि उनके पढ़ने से बालिकाएँ और बालक सच्चे हरिभक्त, नीति-निपुण, व्यवहार-कुशल और सच्चरित्र बन सकते हैं।

यह पुस्तक हमने कई एक पुस्तकों के आधार पर लिखी है यह संग्रह हमारा किया हुआ है। इसलिये यदि हम इस पुस्तक की अधिक प्रशंसा करें तो हमारा ऐसा करना "आत्मश्लाघा" करना समझा जायगा। तथापि हम इस पुस्तक के पढ़ने का अनुरोध प्रत्येक बालक और बालिका से करते हैं।

साथ ही हम उन सज्जन और उदार-चित्त महानुभावों को हृदय से धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इस "पुस्तक-माला" की पुस्तकों की प्रशंसा और आवश्यकता दिखला कर, हमारा एवम् प्रकाशक महोदय का उत्साह बढ़ाया है।

हमें पूर्ण आशा है कि हिन्दी पढ़ने वाली बालिकाएँ और बालक "पुस्तक-माला" की पुस्तकें चाव के साथ पढ़ कर, आशातीत लाभ उठावेंगे।

प्रयाग
मार्गशीर्षशुक्ला ४ सं० १९६७ } चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा

विषय-सूची

—::०::—

[प्रथम-खण्ड]

[द्वितीय-खण्ड]

[तृतीय-खण्ड]

उपदेश-रत्न-माला

प्रथम-खण्ड

१—विद्या की महिमा

विद्या रूपी वस्तु मनुष्य का अधिक रूप बढ़ाने वाली है। विद्या से भोग, यश और सुख मिलते हैं। परदेश में विद्या भाई की तरह सहायता करती है। विद्या देवता की तरह मन चाहा फल देती है। विद्या के बल से साधारण मनुष्यों का राजा भी आदर करते हैं। इसलिये परिश्रम कर के विद्या सीखनी चाहिये। जिस मनुष्य में विद्या नहीं, वह पशु के समान है।

जिनमें न तो विद्या है, न तप है, न ज्ञान है, न शील है, न गुण है और न धर्म्म है—वे मनुष्य पृथ्वी के बोझ हैं।

उनका मनुष्य का चोला हुआ तो क्या, पर असल में वे पशु की तरह विचरते हैं।

साहित्य और सङ्गीत विद्या को जो मनुष्य नहीं जानता, वह बेसींग और बेपूँछ का पशु है। वह तृण नहीं खाता और जीता है—यह उस पशु का परम भाग्य है।

सुन्दरता, तरुणता और बड़े कुल में जन्म, इनके रहते भी, विद्या-हीन मनुष्य उसी तरह शोभा को प्राप्त नहीं होता, जैसे सुन्दर किन्तु गन्ध-रहित पलाश का फूल अच्छा नहीं लगता।

जैसे कोकिलों की शोभा स्वर है, स्त्रियों की शोभा पतिव्रता होना है, वैसे ही कुरूपों की शोभा विद्या है और तपस्वियों की शोभा क्षमा है।

जैसे असंख्य तारों के रहते केवल एक चन्द्रमा के प्रकाश से सारे आकाश का अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही कुटुम्ब में यदि एक भी विद्या-युक्त सुपुत्र हो, तो उसका प्रकाश सारे कुल के अन्धकार को दूर कर देता है।

बड़ी आयु वाले मूर्ख बालक से, वह बालक कहीं अच्छा है; जो होते ही मर जाता है। क्योंकि उसके मरने का दुःख तो थोड़े ही दिनों तक रहता है, पर मूर्ख होने का दुःख, जब तक वह जीता है, तब तक माता पिता को सदा सताया करता है।

बुरे ग्राम का बसना, नीचों की सेवा, बुरा भोजन, लड़ाकी स्त्री, मूर्ख पुत्र और विधवा कन्या—ये छः बिना अग्नि ही शरीर को जलाते हैं।

उस गौ से क्या लाभ है, जो न दूध देती है और न गाभिन है और ऐसे पुत्र होने से क्या लाभ, जो न तो विद्वान् है और न धार्मिक ही है।

धन से धर्म्म की रक्षा होती है, विद्या से योग और ज्ञान की रक्षा होती है और भली स्त्री से घर की रक्षा होती है।

जैसे राजा का बल सेना है, वैश्यों का बल धन, और शूद्रों का धन सेवा है, वैसे ही ब्राह्मणों का बल विद्या है।

धन-हीन, हीन नहीं है, असल में हीन तो वही है जो विद्या रत्न से हीन है।

विद्या विनय की देने वाली है। विनय आने से मनुष्य सत्पात्र होता है। सत्पात्र को धन मिलता है। धन से धर्म्म होता है और धर्म्म से सुख मिलता है।

मनुष्य की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली पाँच चीजें हैं। अर्थात् द्रव्य, बन्धु, वय, कर्म और विद्या; पर इन पाँचों में विद्या सब से बढ़ कर है।

सफ़ेद बालों वाला, या बड़े कुटुम्ब वाला या बड़ा धनी बड़ा नहीं है। ऋषियों ने कहा है कि जो विद्या में सब से बड़ा है वही असल में बड़ा है।

बालों के पकने से कोई बूढ़ा नहीं होता। जो युवा है और बड़ा है उसीको देवताओं ने बूढ़ा कहा है।

विद्या में कामधेनु के समान गुण हैं। क्योंकि विद्या अकाल में भी फल देती है और विदेश में माता के समान पालन पोषण करती है। विद्या असल में गुप्त धन है।

जिसने उत्तम कुल में जन्म तो पाया; परन्तु विद्या न पढ़ी तो उससे कुलीन होने ही से क्या लाभ हुआ? क्योंकि जो विद्वान् हैं और कुलीन नहीं हैं, उनको देवताओं के साथ साथ पूजा हुआ करती है।

संसार में शरीर की सुन्दर गठन या बनावट को कोई नहीं पूँछता। यहाँ तो विद्या ही की पूँछ है। जैसे कोयल काली होने पर भी मधुर-कण्ठ के लिये सराही जाती है।

जैसे धार्म्मिक जन मृत्यु आने पर भी धर्म्म नहीं छोड़ते और पुण्य कर्म्म करते ही जाते हैं, वैसे ही पण्डित अपने को अजर अमर समझ कर विद्या पढ़ते हैं। अर्थात् यह न सोचना चाहिये कि एक दिन तो मरना है ही, विद्या क्यों पढ़ें। जैसा कि प्रायः आलसी लोग कहा करते हैं—"पढ़ितव्यं सो भी मरतव्यं, पण्डित दांत खटाखट क्यों कर्त्तव्यं ?"

स्त्री, भोजन और धन के संग्रह में मनुष्यों को सन्तोष करना चाहिये, किन्तु, पढ़ना, जप और दान करने में सन्तोष कभी न करना चाहिये।

शरीर में झुर्रियाँ भले ही पड़ जाँय, पर मनुष्य को कुछ न कुछ पढ़ते रहना ही चाहिये। क्योंकि विद्वानों को वह पद मिलता है जो धनवानों को कभी नहीं मिल सकता।

जो बालक मन लगा कर नहीं पढ़ाया गया, उसकी माता बैरी और पिता उसका शत्रु है।

ऋण करने वाला पिता, खोटी माता, सुन्दरी स्त्री और मूर्ख पुत्र बैरी हैं। इसलिये बुद्धिमानों को चाहिये कि वे अपने लड़कों को विद्या पढ़ावें।

२—विद्वानों की महिमा

विद्या पढ़ कर जिनकी वाणी सुधर चुकी है जिन में शिष्यों को पढ़ाने के योग्य विद्या है और जो प्रसिद्ध कवि हैं, वे यदि निर्धन रहें—तो इसमें उस देश राजा की निन्दा है, जिसमें वे रहते हैं। क्योंकि निन्दा उन्हीं जौहरियों की होती है, जो अच्छी मणियों का मोल घटाते हैं।

राजाओं को चाहिये कि वे विद्वानों का अनादर न करें। क्योंकि विद्वानों के पास धन है, जो देने से बढ़ता है और कभी घटता नहीं।

जिन विद्वानों को मोक्ष तक का साधन ज्ञात है उन पण्डितों का अपमान भूल कर भी न करना चाहिये। क्योंकि तिनके के बराबर धनवान का धन उन्हें नहीं रोक सकता। भला मदमस्त हाथी को यदि कोई कमल की डण्डी के सूत से रोका चाहे तो क्या वह रुक सकता है? कभी नहीं।

हँस पर. यदि विधाता कुपित हो, तो वह उसका कमल वन में रहना और वहाँ का उसका भोग विलास नष्ट कर सकता है। परन्तु उसके दूध और जल बिलगाने की प्रसिद्ध विद्या की कीर्ति को विधाता भी नहीं नाश कर सकता।

बिजायठ, कङ्कण और चन्द्रमा के समान उज्वल मोतियों का हार, स्नान, चन्दन का लेप, फूलों की सजावट और बालों

के टेढ़ी तिरछी माँग पुरुषों को नहीं सजा सकती। उनकी शोभा बढ़ाने वाली तो विद्या से संस्कार की गयी, उनकी केवल वाणी है। क्योंकि और सब बनावटी सजावटें तो धीरे धीरे नष्ट हो भी जाती हैं, पर वाणी की सजावट सदा बनी रहती है। इसलिये मनुष्यों का गहना सुन्दर वाणी ही है।

यदि 'क्षमा' हो तो फिर कवच की क्या ज़रूरत है? जो क्रोधी है उसे दूसरे शत्रु की क्या आवश्यकता है? यदि 'जाति' है, तो अग्नि का क्या प्रयोजन है? मित्रों के पास रहते धन धान्य की क्या ज़रूरत है? जिसके पास दुर्जन रहते हैं उसका सर्प क्या कर सकते हैं और जिसके पास निर्दोष विद्या है उसे अन्य धनों की क्या ज़रूरत है? इसी तरह जिस मनुष्य में लज्जा है उसको और गहनों की ज़रूरत नहीं और जिसको सुन्दर कविता बनानी आती है उसके लिये राज्य क्या वस्तु है?

वे कवीश्वर ही सब से उत्तम हैं, जिनकी कीर्ति न तो कभी बूढ़ी ही होती है और न कभी मरती ही है।

अच्छे चाल चलन वाला पुत्र, पतिव्रता-स्त्री, सदैव अनुग्रह करने वाला स्वामी, प्रेमी मित्र, छल छिद्र रहित कुटुम्बी, क्लेश के लेश से रहित मन, सुन्दर रूप, अचल सम्पत्ति और विद्या से शोभायमान मुख, यह सब बातें उसी मनुष्य को मिलती हैं, जिस पर भगवान् प्रसन्न होते हैं।

जो मनुष्य, अपने कुटुम्बियों के प्रति उदारता, दूसरे लोगों पर दया, दुर्जनों के साथ शठता, साधु महात्माओं से प्रीति राज-सभा में नीति, पण्डितों के साथ नम्रता, शत्रुओं के साथ शूरता, बड़े लोगों में क्षमा, और स्त्रियों के साथ धूर्तता का व्यवहार करता है—वही इस संसार में निपुण समझा जाता है।

जीव-हिंसा न करना, पराया धन ले लेने की इच्छा रखना, सदा सच बोलना, समय पर यथा शक्ति दान देना, जहाँ पराई स्त्रियों की चर्चा होती हो वहाँ चुपचाप रहना, तृष्णा न करना, बड़े लोगों के साथ सदा नम्र हो कर बात चीत करना, प्राणी-मात्र पर दया करना, सब शास्त्रों का ज्ञान रखना और नित्य-नैमित्तिक कर्म्मों को न छोड़ना—इन नियमों का जो मनुष्य पालन करता है—उसका सदा कल्याण होता है।

विद्वानों की सङ्गत बुद्धि की जड़ता को हरती, सत्य कुल-कीर्त्ति को बढ़ाती है। विद्वानों को सङ्गत की महिमा को भला कौन कह सकता है।

जो नीच हैं वे विघ्नों से डर कर किसी काम के करने में हाथ नहीं डालते। जो मध्य दर्जे के मनुष्य होते हैं, वे काम को आरम्भ तो कर डालते हैं पर विघ्न सामने आते ही उस कार्य्य को छोड़ बैठते हैं। पर जो उत्तम श्रेणी (दर्जे) के लोग हैं, वे काम को एक बार आरम्भ कर, सब विघ्न बाधाओं को दूर कर के, उस काम को पूरा कर के छोड़ते हैं।

अच्छे आदमी दुष्टों और थोड़ी पूँजी वालों के सामने कभी हाथ नहीं फैलाते। वे न्याय से जो पैदा करते हैं उसीसे अपना निर्वाह कर लेते हैं। प्राण उनके भले ही चले जाँय वे नीच कामों में कभी हाथ नहीं डालते। अच्छे मनुष्यों की परीक्षा विपत्ति पड़ने पर ही हुआ करती है। अच्छे मनुष्यों के लिये यह संसार तलवार की पैनी धार के समान है। ज़रा चूके और मरे। अर्थात् अच्छों को इस संसार में बड़ी सावधानी से बर्त्तना चाहिये।

३—मान की महिमा

जो सिंह सदा मतवाले हाथी के मस्तक का माँस खाया करता है, वह भूख के मारे दुर्बल और बूढ़ा होने पर शक्ति-हीन हो कर, क्या कभी सूखी घास खायगा? अर्थात् जो अपने मान और अपनी प्रतिष्ठा का विचार रखते हैं विपत्ति पड़ने पर भी कभी नीच काम नहीं करते।

बैल की एक छोटी सी हड्डी को जिसमें कुछ माँस और चर्बी लगी हुई है, पाकर, कुत्ता भले ही प्रसन्न हो जाय, चाहे उससे उस का पेट भी न भरे, पर सिंह भूखा होने पर भी गोद में आये हुए स्यार को छोड़ कर, सामने आये हुए हाथी को मारता है। अर्थात् बड़े लोग विपत्ति पड़ने पर भी छोटे कामों में हाथ नहीं डालते।

टुकड़ा देने वाले मालिक के सामने कुत्ता, पूँछ हिलाता है, उसके पैरों पर बार बार सिर रगड़ता है, ज़मीन पर लोट कर अपना मुँह और पेट दिखलाता है। पर हाथी भोजन देने वाले की ओर गम्भीर हो कर देखता है और उसके बहुत कहने सुनने पर झूम झूम कर भोजन करता है।

इस संसार में उसी पुरुष का जन्म लेना सफल है, जिसने जन्म लेकर अपनी जाति या वंश की कुछ सेवा कर के, उसको

उन्नति की। नहीं तो संसार में नित्य हज़ारों आदमी पैदा होते और मरा ही करते हैं।

आकाश में बृहस्पति आदि और भी पांच छः बड़े बड़े ग्रह हैं, पर विशेष बहादुरी चाहने वाले राहु और केतु उनको नहीं ग्रसते, पर वे पूर्ण तेज वाले चन्द्र और सूर्य्य ही को ग्रसा करते हैं।

मैनाक पर्वत को चाहिये था कि वह इन्द्र के वज्र की मार से मर जाता। अपने पिता हिमाचल को दुःख में छोड़, उसका समुद्र में जा छिपना बड़ी निन्दा का काम है। अर्थात् सन्तान का कर्त्तव्य है कि पहले अपने माता पिता को प्रसन्न कर के, फिर आप सुख भोगे।

सूर्य्यकान्तिमणि (आतिशी शीशा) जड़ यानी निर्जीव है तो क्या हुआ, पर सूर्य्य की किरणों के छूते ही वह जल उठती है। अर्थात् सूर्य्य की किरणों को सूर्य्य के पैर समझ कर, उनसे अपना छुआ जाना वह अपमान का कारण समझती है। तात्पर्य्य यह है कि जो प्रतिष्ठित जन हैं, वे कभी अपना अपमान नहीं सहते।

सिंह का बच्चा छोटा होने पर भी सदा हाथी ही का शिकार किया करता है। जो तेजस्वी हैं उनका स्वभाव ही ऐसा होता है। यह बात अवस्था के ऊपर निर्भर नहीं है।

जैसे फूल के गुच्छे की दो दशाएँ हुआ करती हैं वैसे ही मनुष्य की भी दो हालतें होती हैं। फूल के गुच्छे या तो किसी के सिर की शोभा बढ़ाते हैं, या बन ही में, पृथिवी पर पड़े पड़े सूख जाते हैं। जो अच्छे मनुष्य हैं, वे या तो ऐसे काम करते हैं, जिनसे वे लोगों के सिरमौर समझे जाँय, या चुपचाप अपना जीवन बिता देते हैं।

वड़े लोगों की सब बातें वड़ी हुआ करती हैं। बड़ों के काम और उनका ऐश्वर्य्य (रुतवा) भी वड़ा ही हुआ करता है। जैसे शेष जी ने अपने फनों पर पृथिवी को रख लिया है। उन शेष जी को भी एक कछुए ने अपनी पीठ पर रख लिया है और समुद्र ने उस कछुए को मान सहित वराह जी को सौंप दिया है।

४—धन की प्रशंसा

जाति का अभिमान रसातल में चला जाय और सब गुण उससे भी नीचे चले जाँय और शील पर्वत से गिरा कर चूर चूर हो जाय और शूरता रूपी शत्रु पर वज्र टूट पड़े, भर्तृहरि जी लिखते हैं कि हमें केवल धन ही चाहिये, जिसके विना सब गुण तिनके बराबर हैं।

जिस मनुष्य के पास धन नहीं होता उसके हाथ, पैर, नाक, कान आदि इन्द्रियाँ ज्यों की त्यों बनी रहती हैं, पर केवल धन पास न होने से, वह और का और हो जाता है।

जिसके पास धन है वही नर कुलीन है, वही पण्डित है, वही गुणी है, वही वक्ता है, और वही दर्शन करने योग्य है।

बुरे मंत्रियों की बुरी सलाह से राजा, राजा के संग से तपस्वी, दुलार से पुत्र, विद्या न पढ़ने से ब्राह्मण, कुपुत्र (कपूत) से कुल, खल की सेवा से शील, मद्य (शराब) पीने से लज्जा, बिना देखे भाले खेती, परदेश में अधिक रहने से स्नेह, रुखाई से मैत्री, अनीति से बढ़ती और लुटाने से धन नष्ट होता है।

धन के निकास के तीन ही रास्ते हैं। अर्थात् दान, भोग और नाश। जो धन को न तो किसी को देता है और न स्वयं उस धन से भोग करता है उसका धन तीसरे रास्ते से अपने आप निकल जाता है।

जैसे शान से खरादी हुई मणि, लड़ाई में तलवार के घाव से मरा हुआ सिपाही, मद से उतरा हुआ लटा दुबला हाथी, शरद ऋतु की नदी और दूज का चन्द्रमा, अच्छा जान पडता है वैसे ही अति दान देने से धन-हीन राजा भी अच्छा जान पड़ता है।

जो राजा पृथिवी रूपी गाय को अच्छी तरह दुहा चाहे उसे बछड़े के समान प्रजा का भली भांति पालन करना चाहिये। जब प्रजा रूपी बछड़ा अच्छी तरह से पाला पोषा जाता है, तब कल्पलता के समान यह पृथिवी तरह तरह के फल फूल देती है।

विधाता ने भाग्य में जितना धन लिख दिया है, थोड़ा या बहुत वह चाहे मारवाड़ की रेतीली भूमि में जा बैठे, तो भी मिलेगा और चाहे सुमेर पर्वत पर पहुँच जाय, तो भी उतना ही मिलेगा। इस लिये मनुष्य को चाहिये कि वह धैर्य्य रखे। घड़ा को चाहे समुद्र में डुबा दो या कुएँ में, उसमें जल उतना ही आवेगा जितनी उसमें जगह है।

जो मनुष्य धन-हीन हो जाता है, वह एक मुट्ठी जौ मिलने ही की इच्छा किया करता है और जब वही आदमी धनवान् हो जाता है, तब वह सारे संसार को तिनके के बराबर मानने लगता है।

राजा भर्तृहरि जी ने राजाओं की नीति को चञ्चल अर्थात् सदा एक सी न रहने वाली, सिद्ध करने के लिये उसका मिलान वेश्या के साथ किया है। वे लिखते हैं—राजाओं की नीति कभी सत्य (सच्ची) और कभी मिथ्या (झूठी) हुआ करती हैं। कभी कठोर और कभी कोमल होती है। यही नीति कहीं तो सैकड़ों के सिर कटवा डालती है और कहीं दया की नदी बहाने लगती है। राज-नीति कहीं उदार और बहुत धन ख़र्च कराने वाली,

और कहीं धन बटोरने वाली होती है। जैसे वेश्या नाना रूप धारण करती है, वैसे ही राजनीति भी अनेक रूप धारण किया करती है।

जिन राज-कर्म्मचारियों को अधिकार मिले हुए हैं, यदि उन में विद्या, बड़ाई, ब्राह्मणों का पालन, दान देना, धन का उचित रीति से भोगना और मित्रों का उपकार करना न आया, तो उनके उस अधिकार को धिक्कार है।

सब जानते हैं कि चातक पक्षियों का मेह ही आधार है। पर निठुर मेह चातकों की दीन विनय को टकटकी लगाये देखता तो है, पर उन बेचारे आसरा लगाये हुए पक्षियों की वह आशा पूरी नहीं करता।

हे मित्र पपीहा! ज़रा ध्यान से हमारी भी बात सुन लो। इसमें सन्देह नहीं कि आकाश में बहुत से बादल दिखलाई पड़ते हैं, पर वे सारे एक स्वभाव के नहीं हैं। उनमें ऐसे भी हैं जो बात की बात में पानी बरसा कर, पृथिवी को तराबोर कर देते हैं और उनमें ऐसे भी हैं जो केवल गर्ज गर्ज कर कोरे चले जाते हैं। इसलिये हे मित्र! हमारा कहना मानो और हरेक बादल के सामने जल के लिये दीन वचन मत बोला करो। अर्थात् संसार में जितने धन वाले हैं, वे सभी दाता नहीं हैं। कोई तो माँगने वाले को अपना उदारता से अयाचक बना देते हैं और कोई कोई अपने धन की कोरी डींगें मारते हैं; देते फूटी एक कौड़ी भी नहीं।

५—दुर्जनों की निन्दा

बुरे आदमियों में नीचे लिखे छः लक्षण हुआ करते हैं— (१) निर्दय-पन, (२) व्यर्थ दूसरों के साथ शत्रुता करना, (३) दूसरों के धन को हरने की इच्छा करना, (४) पराई स्त्री को बुरी निगाह से देखना, (५) अच्छे आदमियों की बात न मानना और (६) अपने कुटुम्बियों की बढ़ती देख कर जल मरना।

बुरा मनुष्य भले ही पढ़ा लिखा क्यों न हो पर उसका सङ्ग कभी न करना चाहिये। क्योंकि जिस साँप के मस्तक पर मणि होती है, वह डसने की आदत नहीं छोड़ देता। इसी तरह बुरा मनुष्य पढ़ लिख कर भी बुराई को नहीं छोड़ता।

जो दुर्जन है, वे गुणवानों में भी कलङ्क लगाया करते हैं। जैसे उद्योगी को वे सुस्त, व्रत करने वाले को ढोंगी, पवित्र रहने वाले को छली, शूर को निठुर (दया शून्य), थोड़ा बोलने वाले को अभिमानी (घमण्डी) वक्ता को बकवादी और शान्त—चित्त वाले को आलसी बतलाया करते हैं। तात्पर्य्य यह है कि संसार में ऐसा कोई गुणी नहीं, जिसमें दुर्जनों ने दोष न लगा डाला हो।

जो लोभी है उसे दूसरे औगुण की क्या ज़रूरत है? जो निन्दक है उसे और पाप करने की क्या आवश्यकता है? जो

सच्च बोला करता है वह तप करे चाहे न करे। जिसका मन पवित्र है उसे तीर्थों में जा कर देह रगड़ने की आवश्यकता नहीं है। जो सज्जन हैं उन्हें मित्र और कुटुम्बियों की कमी नहीं रहती। संसार में जिनकी प्रशंसा फैली हुई है उन्हें गहना पहन कर देह सजाने की ज़रूरत नहीं है। जो विद्वान हैं उनका धन एकत्र करना व्यर्थ है और जो आदमी बदनाम है वह मरा ही हुआ है।

भर्तृहरि जी ने लिखा है कि मलीन चन्द्रमा, कुरूपा स्त्री, कमल बिन सरोवर, सुन्दर डौल डौल और सूरत का मूर्ख लालची धनी, धनहीन सज्जन और राज-सभा में दुष्ट सभ्य हमारे हृदय में काँटे की तरह चुभते हैं।

बड़े क्रोधी राजा का कोई मित्र नहीं होता। उससे सदा लोग डरा करते हैं। जैसे अग्नि होम करने वाले को भी छूने पर जला देती है वैसे ही क्रोधी राजा अपने हितैषी मित्रों का सदा अपमान ही किया करता है। इसीसे उसका कोई मित्र नहीं बनता।

सच तो यह है कि दूसरों की सेवा करना बड़ा कठिन काम है। साधारण मनुष्य की तो बिसात ही कितनी है, बड़े बड़े संयमी भोगी भी सेवा-धर्म्म को नहीं निभा सकते। क्योंकि जो नौकर चुप रहता है उसे उसका मालिक गूँगा, सावधानी से बातचीत करने वाले को बकवादी, दूर रहने वाले को मूर्ख, क्षमापूर्वक वर्ताव करने वाले को डरपोंक और बात न सहने वाले को कमीना कहा करता है।

बुरे आदमियों को भड़काने वाला दूसरों की बातों को न मानने वाला और जिसके पूर्वजन्म के किये हुए बुरे काम प्रकट

हो रहे हैं और जो भाग्य से धनवान भी है और जो गुणियों का शत्रु है, ऐसे नीच आदमी के साथ रह कर भला कोई मनुष्य किस तरह सुख पा सकता है ? कभी नहीं।

जैसे मध्याम्ह (दोपहर) से पहले की धूप की परछाईं पहले बड़ी होती और पीछे से धीरे धीरे घटती जाती है, वैसे ही बुरे मनुष्य की मित्रता पहले तो बहुत बढ़ जाती है, पीछे घटने लगती है। पर अच्छे लोगों की मित्रता पहिले कम और पीछे बढ़ती है।

हिरन, मछली और सज्जन बिना किसी को सताये, घास, जल और सन्तोष से अपना निर्वाह करते हैं, पर बहेलिया, धीवर और दुर्जन—हिरन, मछली और सज्जनों को अकारण ही सताया करते हैं।

घी और चीनी से सींचने पर भी जैसे नींब का कड़ुआपन नहीं जाता, वैसे ही हज़ार तरह से यत्न करने पर भी जो दुर्जन हैं—वे सज्जन नहीं होते।

वह मनुष्य कोमल कमल की डण्डी के सूत से हाथी को बाँधना चाहता है और सिरस के फूल की पाँखुड़ी से हीरे को बेधा चाहता है, जो खलों को अपने अमृत समान उपदेश से अच्छे रास्ते पर लाने की इच्छा करता है।

६—मूर्खों की निन्दा

जो पढ़ा लिखा नहीं है अज्ञान है—उसे यदि कोई कुछ समझाना चाहे तो समझा सकता है। विद्वान् हरेक बात को सहज ही में समझ लेता है, पर जिसने थोड़ाही पढ़ना लिखना सीखा है और जो उतनी ही विद्या के अभिमान में चूर है—उसे यदि ब्रह्मा भी समझाना चाहें, तो भी नहीं समझा सकते।

यदि चाहे तो मनुष्य जबरदस्ती मगर की डाढ़ों के भीतर से मणि निकाल सकता है और जिस समुद्र में बड़ी भयानक लहरें उठ रही हैं— उस बड़े समुद्र को मनुष्य पैर कर, पार हो सकता है। फुँफकारते हुए साँप को भी मनुष्य फूलों के गुच्छे की तरह सिर पर रख सकता है, पर मूर्ख के चित्त को, जो सदा बुरे कामों में लगा रहता है, कोई नहीं बिलगा सकता।

यदि यत्न से पेरै तो बालू से भी तेल निकल सकता है और प्यासा मनुष्य, मृगतृष्णा के जल से भी प्यास बुझा सकता है। यदि खोज की जाय तो, खरहे का सींग भी मिल सकता है, पर मूर्ख के चित्त की वृत्ति का सुधारना सब तरह से असम्भव है।

जल से अग्नि का कोप शान्त हो सकता है, छाते से धूप का ताप मिट सकता है, अङ्कुश से मत्त हाथी बस में किया जा सकता है डण्डे से दुष्ट बैल और गधा सीधा कर लिया जाता है, दवाइयों और मंतर के प्रयोग से साँप का विष भी उतारा जा सकता

है पर मूर्ख को औषधि नहीं है। जो चतुर हैं उन्हें हठी मूर्खों के सुधारने का वृथा यत्न न करना चाहिये।

जिन लोगों में कुछ सार नहीं है, जो कोरे मूर्ख हैं, उन पर उपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि मलयाचल के सग से बाँस चन्दन नहीं होता॥

जो मूर्ख है उसके लिये शास्त्र वैसा ही है जैसे अन्धे के लिये दर्पण (शीशा)।

चुप रहना एक तो अपने अधीन है दूसरे इसमें अनेक गुण भी हैं। विधाता ने इसे बेसमझी का ढकना बनाया है और समझदारों की सभा में तो मूर्खों का मौन (चुप रहना) गहना है। जहाँ विद्वान बैठे हों, वहाँ मूर्ख को चुपचाप ही बैठना चाहिये।

भर्तृहरि जी ने लिखा है कि जब मुझ में कुछ कुछ समझ आयी, तब मैं मदमत्त हाथी की तरह घमण्ड से अन्धा हो गया, पर जब मैं विद्वानों की सङ्गत में रहने लगा और मुझ में ज्ञान आया, तब मुझे अपनी मूर्खता मालूम पड़ी और मेरा पहिले वाला अभिमान, ज्वर की तरह उतर गया। तात्पर्य्य यह कि मूर्ख का सुधार विद्वानों की सङ्गत में रहने से होना सम्भव है।

जिस तरह सड़ी, घुनी, लार से भीगी, नीरस और माँस रहित मनुष्य की हड्डी को निर्लज्ज कुत्ता बड़े चाव के साथ खाते समय, पास खड़े हुए इन्द्र से भी नहीं डरता, उसी तरह नीच मनुष्य बुरे काम करने के समय किसी से नहीं डरते।

पहिले पहिल गङ्गा महादेव जी के मस्तक पर गिरीं, फिर वहाँ से ऊँचे पर्वत पर, उस पर्वत से पृथिवी पर, पृथिवी से समुद्र में जाकर मिल गयीं। अर्थात् गङ्गा धीरे धीरे नीचे ही

नीचे गिरती गयीं। इसी तरह जो मनुष्य विवेक-शून्य (अविचारी) है, वह बराबर नीचे ही नीचे गिरता चला जाता है।

पहाड़ों में, सघन जङ्गलों में सिंह या भील आदि जङ्गली लोगों के साथ दिन काटना तो अच्छा है, पर मूर्खों के साथ यदि इन्द्र के भवन में भी रहना पड़े तो भी अच्छा नहीं। मूर्खों का साथ तो सदा छोड़ने योग्य है।
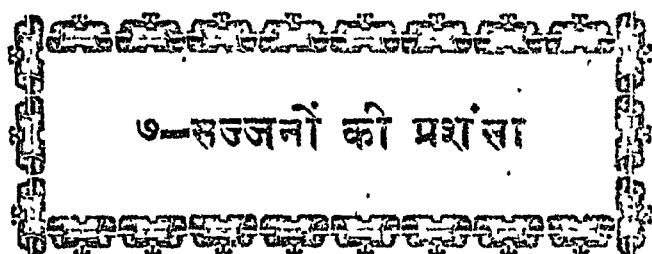
७—सज्जनों की प्रशंसा

राजा भर्तृहरि उन सज्जनों को प्रणाम करते हैं, जो सदा अच्छी सङ्गत में रहना पसन्द करते हैं, जो दूसरों के गुणों का आदर करते और उन से प्रीति करते हैं, जो बड़े बूढ़ों के साथ नम्रता पूर्वक वर्ताव करते हैं, जो विद्या-व्यसनी हैं, जो अपनी ही स्त्री को स्त्री मानते और अन्य स्त्रियों को माता और बहिन समझते हैं, जो संसार की बुराइयों से सदा डरते रहते हैं, जो त्रिशूलधारी महेश्वर के भक्त हैं, जो अपने मन को बुरे कामों से बचाते हैं और जो कुसङ्ग में नहीं पड़ते।

विपत्ति पड़ने पर धीरज रखना, अपनी बढ़ती होने पर आपे से बाहिर न होना, सभा में श्रोताओं के मन को लुभाने वाली बातें कहना, युद्ध में पराक्रम दिखाना, सदा यशस्वी होने की इच्छा रखना और शास्त्र के पढ़ने लिखने मे रुचि रखना—ये छः गुण महात्माओं मे स्वभाव ही से रहा करते हैं।

चुपचाप दान करना, घर आये हुए पुरुष का सत्कार करना, दूसरों का उपकार करके चुप रहना, दूसरे के उपकार की खुलं-खुल्ला बड़ाई और प्रशंसा करना, धन मिलने पर अभिमान न करना, और दूसरों की चर्चा चलने पर, सदा बुराई को छोड़ कर प्रशंसा करना—ये तलवार की धार के समना कठिन व्रत, अच्छे मनुष्यों में अपने आप आ जाया करते हैं।

हाथ दान से, बड़ों को प्रणाम करने से मस्तक, मुख सत्य बोलने से, दोनों भुजा अतुल पराक्रम से, हृदय स्वच्छ वृत्ति रखने से, और धर्म-शास्त्र सुनने से कान—बड़ाई के योग्य होते हैं।

जो सज्जन हैं उनको मन धन पास होने पर कमल से भी अधिक कोमल हो जाता है और विपत्ति में वही मन पहाड़ की बड़ी मोटी शिला के समान कड़ा हो जाता है।

गर्म लोहे पर पानी की बूँद गिरते ही नष्ट हो जाती है, वही बूँद कमल के पत्र पर जब पड़ती है, तब मोती के समान अच्छी मालूम देने लगती है। फिर वही बूँद स्वाति नक्षत्र में यदि समुद्र की किसी सीप में पड़ जाय, तो मोती बन जाती है। इससे यह सिद्ध हुआ कि मनुष्यों में अच्छे मध्यम और बुरे गुण सङ्ग ही से आते हैं।

नीचे लिखी तीन चीज़ें बड़े पुण्यवानों ही को प्राप्त होती हैं—

१ अच्छे चाल चलन से पिता को प्रसन्न रखने वाला पुत्र, २ पति का सदा हित चाहने वाली स्त्री और ३ सुख दुःख का साथी मित्र।

अच्छे मनुष्य को चाहिये कि वह एक देव को माने विष्णु या शिव। एक मित्र करे, चाहे धनी हो या निर्धन। एक जगह रहे—चाहे नगर में या वन में। एक ही से प्रीति करे—चाहे किसी सुन्दरी स्त्री से या पहाड़ की कन्दरा (गुफा) से। अर्थात् मनुष्य को दो नावों पर पैर न रखना चाहिये।

जो सज्जन होते हैं वे नम्रता से ऊँचे होते हैं। दूसरों की बड़ाई करके अपना गुण प्रकट करते हैं। दूसरों के कार्य्यों को सिद्ध करके अपने कामों को पूरा करते हैं और अपने निन्दकों

को क्षमा से नीचा दिखाते हैं। ऐसे अद्भुत काम करने वाले सज्जनों का संसार में ऐसा कौन है, जो आदर नहीं करता? अर्थात् ऐसों का सभी आदर करते हैं।

जिस तरह फलों से लदे पेड़ और नवीन जल से भरे हुए बादल झुक जाते हैं; उसी तरह सज्जन, धन और ऐश्वर्य पा कर, नम्रता से झुक जाते हैं। क्योंकि जो परोपकारी हैं उनका स्वभाव ही ऐसा होता है।

कानों की शोभा शास्त्र सुनने से है, कुण्डल पहनने से नहीं। हाथों की शोभा दान देने से है कड़े पहनने से नहीं, और दयालु सज्जनों के शरीर की शोभा परोपकार करने से होती है, चन्दन लगाने से नहीं।

अच्छे मित्रों की पहिचान के लिये सज्जनों ने ये छः लक्षण बतलाये हैं—

१ मित्र को पाप करने से रोकना, २ मित्र को सदा भला उपदेश देना, ३ छिपाने योग्य बातों को छिपाना, ४ मित्र के गुणों को प्रकाश करना, ५ दुःख में साथ देना और ६ जरूरत पड़ने पर अपनी शक्ति के अनुसार धन देना।

जैसे सूर्य्य विना कहे कमलों को खिलाता है, और चन्द्रमा विना कहे कुमुदनी को प्रफुल्लित करता है और बादल विना माँगे जल बरसाते हैं, वैसे ही सज्जन विना माँगे ही दूसरों की भलाई किया करते हैं।

सज्जन वे हैं जो अपनी हानि करके दूसरे के काम को करते हैं, जो अपने और पराये दोनों के काम को साधते हैं वे सामान्य दर्जे के मनुष्य हैं और मनुष्यों में राक्षस वे हैं जो अपने लाभ

के लिये दूसरे की हानि कर देते हैं। भर्तृहरि जी कहते हैं कि उन आदमियों को हम क्या कहें जो व्यर्थ दूसरों के कामों में बाधा डाल कर, उन्हें बिगाड़ा करते हैं।

ज्योंही दूध में जल मिला, त्योंही वह अपने जल रूपी मित्र को अपने सब गुण और रूप दे देता है। फिर अपने मित्र दूध को जलते देख उसका मित्र जल उसकी रक्षा के लिये आग में गिर कर आग को बुझा देता है। दूध अपने मित्र के सङ्कट को नहीं देख सकता और स्वयं उफन कर आग में गिरना चाहता है। परन्तु जल के छींटे पाकर अर्थात् अपने मित्र को आया जान दूध ठण्डा हो जाता है। जो सज्जन हैं उनकी मित्रता भी आपस में दूध और जल जैसी हुआ करती है।

समुद्र में एक ओर तो शेषशायी विष्णु सोते हैं, दूसरी ओर उनके वैरी राक्षस रहते हैं। तीसरी ओर शरण में आये हुये पर्वत पड़े हैं और चौथी ओर बड़वानल प्रलय के अग्नि के सहारे जल को औटा रहा है, पर समुद्र इन सब के रहते हुए भी नहीं घबड़ाता। क्योंकि वह बड़ा पराक्रमी है। वह इन सब बोझों को सह सकता है। भाव यह कि जो बड़े लोग होते हैं, वे अपने ऊपर बोझ पड़ने पर घबड़ाते नहीं।

सज्जनों के लक्षण ये हैं—१—लालच का छोड़ना, २—क्षमा का धारण करना, ३—अभिमान को छोड़ना, ४—पापियों के साथ प्रीति न करना, ५—सदा सच बोलना, ६—अच्छे मनुष्यों के रास्ते पर चलना, ७—पण्डित विद्वानों की सेवा करना, ८—माननीय पुरुषों का सत्कार करना, ९—शत्रुओं को भी प्रसन्न रखना, १०—अपने गुणों को प्रकट करना, ११—कीर्त्ति को बनाये रखना और १२—दुखियों का पालन करना।

इस संसार में ऐसे सज्जन बहुत कम हैं जो मन, वचन और शरीर से पवित्र हों, दूसरों की भलाई कर के तीनों लोकों को प्रसन्न करते हों और जो दूसरों के छोटे छोटे गुणों को भी बड़ा मान कर प्रसन्न होते हों।

हमें उस सोने के सुमेरु पर्वत के और चाँदी के कैलास से क्या प्रयोजन, जहाँ के पेड़ सदा जैसे के तैसे ही बने रहते हैं। हमारी समझ में तो मलयाचल ही उनसे कहीं अधिक बढ़ कर है, जहाँ के कङ्कोल नाम और कुटजादि कड़ुवे से कड़ुवे पेड़ भी चन्दन हो जाते हैं। अर्थात् उन धनी और विद्वानों को धिक्कार है, जिनके पास रहने वाले मनुष्य जैसे के तैसे ही बने रहते हैं और उनकी उन्नति नहीं होती।
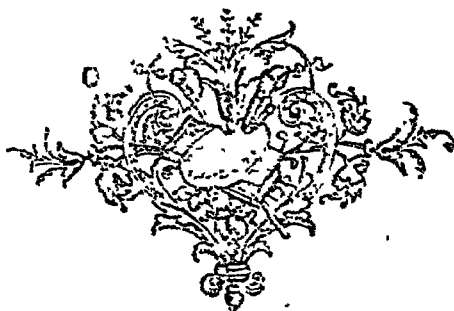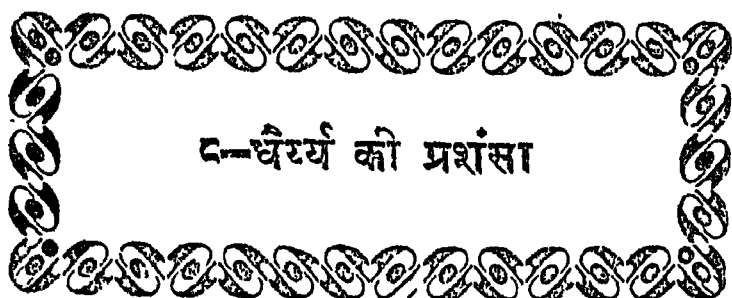
८—धैर्य की प्रशंसा

धीरज रखने वाले पुरुषों के आरम्भ किये हुये काम कभी अधूरे नहीं रहते। जैसे देवताओं को समुद्र मथने पर तरह तरह के मूल्यवान रत्न मिले, पर उन्होंने उसका मथना न छोड़ा। फिर समुद्र मथते मथते जब भयानक काल कूट विष निकला और उसकी लपटों से सारे लोक विकल हो उठे, तब भी उन्होंने धीरज धारण कर अपना मनोरथ न छोड़ा।

जो लोग काम को पूरा करने की कामना रखते हों, उन्हें सुख दुःख की चिन्ता न करनी चाहिये। ऐसे लोगों को कभी तो पृथिवी पर सोना पड़ता है और कभी बढ़िया पलङ्ग भी मिल जाता है। कभी उन्हें शाक भाजी खा कर पेट भरना पड़ता है और कभी बढ़िया भात आदि स्वादिष्ट भोजन भी मिल जाते हैं। कभी उन्हें ओढ़ने को गुदड़ी मिलती है और कभी अच्छे कपड़े भी मिल जाते हैं, किन्तु ऐसे मनुष्य अपने सङ्कल्प से, इन बातों से कभी विचलित नहीं होते।

ऐश्वर्य्य (रुतबा) की शोभा सज्जनता है। शूरवीर वे ही अच्छे समझे जाते हैं, जो बहुत बक बक नहीं करते और समय आने पर अपना पराक्रम दिखला देते हैं। शान्ति-चित्त होना ज्ञान की शोभा है। अर्थात् ज्ञानी हो कर जो शान्त न हुआ वह कौड़ी

काम का नहीं। नम्रता विद्या की शोभा है। दान देने योग्य मनुष्य को दान देने से धन की शोभा होती है, प्रभुता की शोभा क्षमा है। धर्म्म की शोभा छल रहित आचरण से है। किन्तु अन्य सब गुणों की शोभा शील (अच्छे स्वभाव का होना) है।

धीर लोग, न्याय-पथ को छोड़ कर बुरे रास्ते पर पैर नहीं रखते। रीति जानने वाले भले हो उनकी निन्दा करें, या स्तुति। धन रहे चाहे निकल जाय। प्राण बचें या तुरन्त निकल जाँय, पर धीर लोग अच्छे रास्ते को छोड़ कर, कभी बुरे रास्ते पर पग नहीं रखते।

९—दैव (प्रारब्ध) की प्रशंसा

भूख से विकल एक साँप पिटारे में बन्द अपने जीवन की घड़ी गिन रहा था। इतने में अचानक एक चूहे ने रात को पिटारे में छेद किया और वह उस साँप के मुँह में जा पड़ा। कहाँ तो सर्प जीने की आशा छोड़े बैठा था—कहां उसे भर पट भोजन मिला और उस छेद से उसे उस पेटारे से रिहाई भी मिल गयी। वह उस बन्धन से भी छूट गया। इस घटना से सिद्ध होता है कि जीवों की प्रारब्ध (अर्थात् पूर्व जन्म में किये हुए अच्छे बुरे कामों के फल) ही इस जन्म में उनकी बढ़ती घटती का हेतु है।

जैसे रबड़ की गेंद नीचे पटकने पर भी ऊपर ही को उछलती है वैसे ही अच्छे मनुष्य यदि विपत्ति में पड़ कर नीचे गिर भी जाँय, तो वे नीचे ही पड़े नहीं रहते, किन्तु गेंद की तरह सङ्कटों से निकल कर ऊपर को आते हैं।

आलस से बढ़ कर मनुष्य का दूसरा कोई शत्रु नहीं है और उद्यम से बढ़ कर उसका कोई मित्र नहीं है। जो लोग उद्यमी हैं वे कभी किसी के आश्रित (मोहताज) या दुःखी नहीं रहते।

काटा हुआ पेड़ फिर बढ़ कर फैल जाता है, और चन्द्रमा घट कर फिर बढ़ता है। यह विचार कर, विचारवान् लोग विपत्ति पड़ने पर कभी दुःखी नहीं होते।

बृहस्पति जैसे मन्त्री, वज्र जैसा शास्त्र देवताओं जैसी सेना, स्वर्ग जैसा गढ़, ऐरावत हाथी जैसा वाहन (सवारी) तिस पर भगवान् विष्णु की पूरी कृपा, पर ये सब सामग्री रहते हुए भी इन्द्र लड़ाई में असुरों से हार गये। इससे यह सिद्ध होता है कि प्राणी मात्र का प्रारब्ध ही सब के प्रबल हैं और पुरुषार्थ व्यर्थ हैं। अर्थात् पूर्व-जन्म के अच्छे बुरे कर्म्मों का अच्छा बुरा फल भोगना ही पड़ता है। पुरुषार्थ से यदि कोई उसे मेंटा चाहे, तो नहीं मेंट सकता।

यद्यपि पुरुषों को अपने अपने कर्म्मों के अनुसार ही अच्छा बुरा फल मिलता है और कर्म्मानुसार ही बुद्धि भी हो जाती है। तो भी विचारवान् लोगों को भली भाँति समझ बूझ कर काम करना चाहिये।

एक मनुष्य जो गञ्जा था—जिसके सिर के बाल उड़ गये थे—घाम से विकल हो छाया ढूढ़ता ढूढ़ता दैव संयोग से एक ताल वृक्ष के नीचे छाया में जा खड़ा हुआ। उसे वहां खड़े देर नहीं हुई थी कि एक ताल का फल उसकी गञ्जी खोपड़ी पर गिरा, जिससे उसकी खोपड़ी फट गयी। इस घटना का फल यह निकला कि अभागे लोग एक विपत्ति से बचना चाहते हैं, पर दूसरी उन्हें झट आ कर घेर लेती है। अभागे जहाँ जाते हैं वहीं उन्हें दुःख झेलने पड़ते हैं।

हाथी और साँप बाँधे जाते हैं। सूर्य्य और चन्द्रमा भी राहु केतु से ग्रसे जाते हैं। पढ़े लिखे आदमी धन-हीन देखे जाते हैं। भर्तृहरि जी कहते हैं कि इससे हमारी समझ में विधाता ही बलवान् है।

विधाता पुरुष-रत्न को सब गुणों की खान और पृथ्वी का भूषण बनाता है। पर ऐसे मनुष्यों को वह आयु बहुत थोड़ी देता है—यह बड़े कष्ट की बात है।

यदि करील की झाड़ में पत्ते न लगें, तो इसमें वसन्त ऋतु का क्या अपराध है? सूर्य्य का प्रकाश रहते हुए भी अगर उल्लू को न दिखलाई पड़े, तो इसमें सूर्य्य का कौन दोष है? पपीहा के मुख में पानी की धारा यदि न गिरे, तो इसमें मेघ का क्या अपराध है? क्योंकि विधाता ने जो जिसके ललाट (माथ) में लिख दिया है, उसको कौन मेंट सकता है, अर्थात् प्रारब्ध—का लिखा अमिट है।
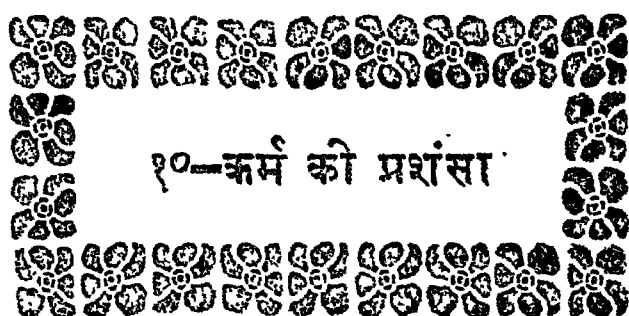
देवताओं को हम नमस्कार करते हैं, किन्तु उनको हम विधाता के वश में पाते हैं। इस लिये हम विधाता को प्रणाम करते हैं। पर विधाता हमें हमारे पूर्व-जन्म के कर्म फलों के अनुसार फल देता है। जब फल और विधाता दोनों ही कर्म के वश में हैं, तब वे दोनों हमारा कर ही क्या सकते हैं। इस लिये जिस कर्म पर विधाता का भी वस नहीं चलता उस कर्म ही को हम नमस्कार करते हैं।

जिस कर्म के प्रभाव से ब्रह्मा जी, कुम्हार की तरह रात दिन संसार की रचना में लगे रहते हैं, जिस कर्म के प्रभाव से, कर्म का फल भोगने के लिये भगवान् विष्णु को बारम्बार अव-तार लेने पड़ते हैं, जिस कर्म के वश में हो कर, महादेव जी को हाथ में खप्पर लेकर दर दर भीख मांगनी पड़ती है और जिस कर्म के प्रभाव से सूर्य्य को रोज़ चक्कर लगाने पड़ते हैं—उस सब से बड़े, देवों के देव, कर्म-देव को हम बारम्बार नमस्कार करते हैं।

मनुष्य की सुन्दर सूरत शकल, कुछ भी काम नहीं आती उत्तम कुल में जन्म, शील, विद्या और बड़ी सावधानी से की

हुई दूसरों की सेवा भी, समय पड़ने पर काम नहीं आती। किन्तु पूर्व-जन्म की कड़ी तपस्या द्वारा इकट्ठा किया हुआ पुण्य फल ही, समय समय पर मनुष्यों को पेड़ की तरह फल देता है।

विकट वन में, युद्ध में, वैरी के साथ काम पड़ने पर, जल और अग्नि से सामना पड़ने पर, समुद्र में, और पहाड़ की चोटी पर, बेसुध सोने पर और दुःख में पड़े हुए मनुष्य की रक्षा; पूर्व-जन्म के किये हुए अच्छे कर्म फल ही किया करते हैं।

पूर्व-जन्म के किये हुए जिन अच्छे कर्मों के फल से बुरे लोग भले बन जाते हैं, मूर्ख विद्वान् हो जाते और शत्रु, मित्र बन जाते हैं और जो छिपी हुई बात को बता देते तथा विष को अमृत बना देते हैं, उन कर्म रूपी देवता की, मनुष्य को सदा सेवा करनी चाहिये। अर्थात् यदि सुख भोगने की कामना हो, तो सदा अच्छे काम किया करो।

चतुर जन वे ही हैं जो करने अकरने कामों का करने के पहले उनके फलाफल को अच्छी तरह समझ बूझ लेते हैं। जो ऐसा नहीं करते उनके बिना विचारे जल्दी में किये हुए बुरे कर्मों का बुरा फल, मरते दम तक, कांटे की तरह उनके हृदय में चुभा करता है।

इस उत्तम मनुष्य के चोले को पाकर जो अभागा मूर्ख अच्छे काम नहीं करता, उसकी उपमा हम उस महा-मूर्ख के साथ देंगे, जो चन्दन की लकड़ियों की आग से, वैडूर्य मणि के बने बर्तन में, तिलों के छिलकों को रांधता है अथवा अकउए की जड़ों को उखाड़ने के लिये, सोने के हल से काम लेता है अथवा जो मूर्ख कोदों अन्न के खेत की रक्षा, कपूर के डेलों की दीवाल बना कर करना चाहता है।

चाहे समुद्र में डूबो, चाहे सुमेरु की चोटी पर चढ़ो, चाहे घोर युद्ध में शत्रुओं को हरा दो, चाहे अन्य खेती आदि व्यापार करो, चाहे पक्षी की तरह आकाश में उड़ते फिरो ; पर जो बात अनहोनी है, वह नहीं होती और जो होने वाली नहीं है वह नहीं टलती है।

मनुष्य के पूर्व-जन्म के सुकर्मों का फल जब उदय होता है, तब विकट वन उसके लिये नगर बन जाता है, सब आदमी उसे अपना मित्र समझने लगते हैं और उसे अपने चारों ओर धन ही धन दिखलाई देने लगता है।

प्रश्न—लाभ क्या है ?

उत्तर—गुणवानों का सत्सङ्ग।

प्र०—दुःख किसे कहते हैं ?

उ०—मूर्खों की बुरी सङ्गत।

प्र०—हानि कौन सी है ?

उ०—अच्छे समय को हाथ से व्यर्थ निकाल देना।

प्र०—चतुराई क्या है ?

उ०—धर्म में रुचि होना।

प्र०—शूर कौन है ?

उ०—जो अपनी चञ्चल इन्द्रियों को सदा वस में रखता है।

प्र०—उत्तम स्त्री कौन है ?

उ०—जो पतिव्रता है और सदा अपने पति की आज्ञा में चलती है।

प्र०—धन क्या है ?

उ०—विद्या।

प्र०—सुख क्या है ?

उ०—घर पर रहना विदेश में न रहना।

प्र०—राज्य क्या है ?

उ०—अपनी आज्ञा का पालन होना।

इस संसार में ऐसे मनुष्य बहुत ही थोड़े मिलते हैं जो सदा मधुर वचन बोलते हैं। किसी से कठोर बात नहीं कहते, जो अपनी ही स्त्री को स्त्री मानते हैं और दूसरों की निन्दा नहीं करते।

जैसे जलती हुई आँख को तुम भले ही उलट पलट दो, उस की लौ सदा ऊपर ही को निकलती रहती है—नीचे को कभी नहीं जाती—वैसे ही धीर पुरुष पर चाहे कैसी भी विपत्ति क्यों न पड़े, उसका धीरज कभी नहीं नष्ट होता।

जो स्त्रियों की बातों में नहीं फँसता, जिसके हृदय में क्रोध रूपी आँच नहीं दहकती और जो अपनी इन्द्रियों को अपने वस में रखता है—वह धीर-पुरुष यदि चाहे तो तीनों लोकों को जीत सकता है।

एक ही अकेला शूर सारी पृथिवी को अपने पाँव के नीचे दबा कर अपने हाथ में कर लेता है। जैसे अकेला तेजस्वी सूर्य्य; सारे जगत को प्रकाश पहुंचा कर, अपनी मुट्ठी में किये हुए हैं।

आँच उस पुरुष के लिये जल की तरह ठण्डी हो जाती है, समुद्र भी एक छोटी नदी की तरह बन जाता है, सुमेरु पर्वत एक डेला सा बन जाता है, सिंह भी हिरन की तरह हो जाता है साँप माला के समान बन जाता है और विष भी उसके लिये अमृत हो जाता है, जिसके शरीर में सारी पृथिवी को मुट्ठी में करने वाला शील हुआ करता है।

लज्जा आदि गुणों को उत्पन्न करने वाली माता की तरह शुद्ध हृदय वाली और सदा अपने आश्रित रहने वाली प्रतिज्ञा को सदा सत्य बोलने वाले तेजस्वी पुरुष कभी परित्याग नहीं करते—प्राण उनके भले ही चले जाँय।
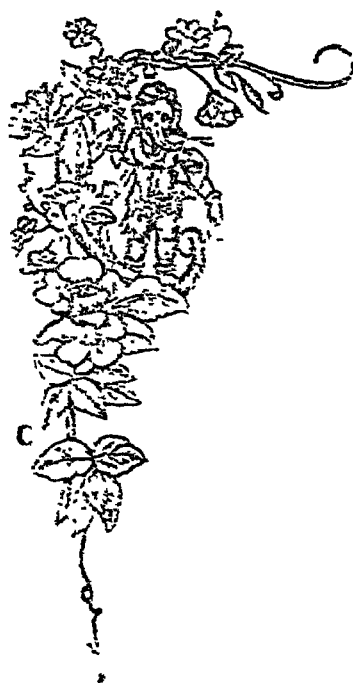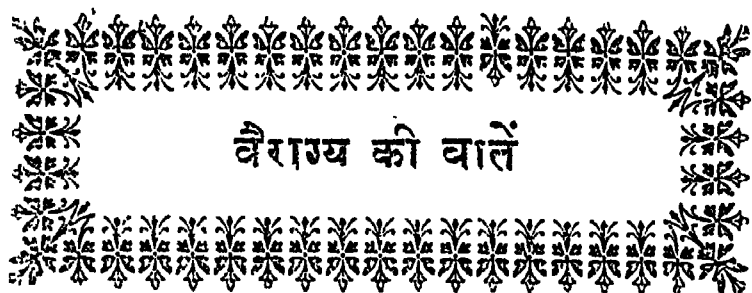
वैराग्य की बातें

जो विद्या वाले हैं तो अपनी विद्या के अभिमान में चूर हैं और धनी हैं वे धन के मद में मत्त हैं। उनके द्वार पर कैसा ही गुणी क्यों न जाय, वे आँख उठा कर भी नहीं देखते। जो साधारण श्रेणी के लोग हैं, वे अल्पज्ञ हैं। लोगों को कोई बात बताने को मन नहीं चाहता। इसलिये विद्वानों की विद्या ठीक पात्र न मिलने से उनके शरीर के साथ ही साथ लोप हो जाती है।

धन मिलने की आशा से हमने कितनी बार भूमि खोदी, कीमिया बनाने के लिये कितनी ही धातुओं को फूँक डाला, विदेशों से धन कमाने की इच्छा से समुद्र को बिलो डाला, बड़े बड़े प्रयत्नों से सेवा कर के—राजाओं को भी प्रसन्न किया, मंत्र जगाने के लिये मरघट पर बैठ कर अनेक रातें बिताईं; पर एक फूटी कौड़ी भी हाथ न लगी। अब मैं मरने के किनारे आ गया हूँ, हे तृष्णा! अब तो तू मेरा पिण्ड छोड़।

मैं अनेक दुर्गम देशों में घूमा फिरा, पर फल कुछ भी न मिला। जाति और कुल के अभिमान को छोड़ कर, दूसरों की सेवा भी की। सो भी सब व्यर्थ गई। कौए की तरह डर डर कर, दूसरों के घरों में खाता भी फिरा; पर इसका भी

सन्तोष-दायक फल न हुआ। दुर्मति और पापों में डूबी हुई हे तृष्णा! तुझे अब तक सन्तोष नहीं हुआ?

खलों की सेवा करने में हमने उनको कड़वी बातें भी सुनी। आँसुओं को रोक कर उनके सामने उदास मन होने पर भी, हम हँसते ही रहे और उन हँसते हुए दुष्टों के सामने, इच्छा न रहते भी हम हाथ जोड़ खड़े रहे। व्यर्थ आशा बँधाने वाली, हे तृष्णा! अब इससे अधिक हमें क्या दुःख देना चाहती हो?

सूर्य्य के उदय और अस्त होने से, दिन दिन आयु घटती ही जाती है। बहुत से कार्य्यों में फँसे रहने से समय का बीतना जान नहीं पड़ता और नित्य लोगों को जन्मते, मरते, बूढ़े होते और विपत्ति में पड़ते देख कर भी डर उत्पन्न नहीं होता। इससे यह जान पड़ता है कि लोग अज्ञान में पड़ कर, भूल रूपी मन्दिरा को पीकर, मतवाले हो रहे हैं।

शरीर में अब कोई काम करने की सामर्थ्य नहीं रही, जो मान पहिले था वह भी अब नहीं रहा, हमजोली अब नहीं रहे, सब मर खप गये; जो एक दो हैं—वे भी अब तब हो रहे हैं। स्वयं बिना लकड़ी टेके उठा तक नहीं जाता, आँखों से दिखलाई भी नहीं पड़ता—पर यह शरीर ऐसा निर्लज्ज है कि अपना मरण सुन अब भी चिहुँक उठता है।

विधाता ने बिना हिंसा किये और बिना प्रयत्न किये मिलने वाली हवा, साँपों के खाने के लिये बनायी और अन्य पशुओं के खाने के लिये घास और सोने के लिये पृथ्वी बनायी। पर उन मनुष्यों के लिये जिनकी बुद्धि समुद्र के पार जा सकती है, ऐसी जीविका बनायी, जिसके ढूढ़ने में सब रहे सहे गुण समाप्त हो जाते हैं।

जिस मनुष्य के संसार से छुटकारा पाने के लिये भगवान् के चरण कमलों का विधिवत् ध्यान नहीं किया, जिसने स्वर्ग का द्वार खोलने के लिये, धर्म्म नहीं बटोरा और जिसने गृहस्थ होकर सन्तान उत्पन्न नहीं किया—वह केवल अपने माता के यौवन रूपी वन को काटने के लिये, कुल्हाड़ा बन कर ही पैदा हुआ है।

सांसारिक विषयों को हमने नहीं भोगा, किन्तु विषयों हमें ही भुगत डाला, हमने तप नहीं तपा, पर तपने हमें ही ताप डाला। हमने काल को नहीं काटा, किन्तु काल ने हमें ही काट डाला और तृष्णा बूढ़ी न हुई किन्तु हम बूढ़े हो गये।

मुँह पर झुर्रियाँ पड़ गयीं, सिर के बाल सफ़ेद होगये और शरीर के सब अङ्ग शिथिल हो गये, पर तृष्णा तरुण होती जाती है।

बहुत काल से भोगे हुए विषय जब अन्त में अवश्य छूट ही जाँयगे, तब मनुष्य पहले ही से उन्हें क्यों नहीं छोड़ देते। क्योंकि जब वे आप से शरीर को छोड़ देते हैं तब बड़ा सन्ताप होता है; और यदि मनुष्य कहीं उन्हें स्वयं छोड़ बैठे तो उसे बड़ा आनन्द प्राप्त होता है।

मनुष्य में जैसे जैसे विचार-शक्ति बढ़ती जाती है, वैसे ही वैसे तृष्णा कम होती जाती है। यहाँ लों कि धीरे धीरे उसका नाश हो जाता है। पर यदि तृष्णा विषयों के संसर्ग में फँसा दी जाय, तो वह दिन दिन बढ़ती जाती है और फिर मनुष्य की तो गिनती ही क्या है, इन्द्र भी चाहें कि तृष्णा को छोड़ बैठें, तो भी उसे नहीं छोड़ सकते।

भीख का अन्न—सो भी नीरस और एक ही जून उसे खाते हैं, धरती पर सोते हैं। शरीर को छोड़ कर दूसरा कोई कुटुम्बी भी नहीं है। पहिले तो ओढ़ना है ही नहीं और जो है उसमें

हज़ारों छेद हैं और बड़ा मैला है। इस दशा को तो प्राप्त हैं, पर आश्चर्य की बात है कि बुरी वासनायें मनुष्यों को तौ भी नहीं छोड़तीं।

देखो पतङ्ग, दीपक की अग्नि में जा कर गिरते तो हैं, पर यह नहीं जानते कि अग्नि में गिरने से हमें मरना पड़ेगा। इसी तरह मछली काँटे में लगा हुआ माँस निगल तो जाती है, पर यह नहीं जानती कि इससे मेरे प्राण निकल जाँयगे। पर मनुष्य को देखो जो जान बूझ कर दुःख देने वाले विषयों में फँसे रहते हैं। यह महा मोह की महिमा नहीं तो और क्या है?

जब खाने के लिये मधुर बनैले फलों की कमी नहीं है और पीने के लिये मीठा पानी मिल रहा है और सोने को लम्बी चौड़ी पृथिवी मौजूद है और शरीर ढकने के लिये पेड़ों की छाल है ही, तब हम थोड़े धन के नशे में चूर, इन्द्रियों के दास दुर्जनों की खरी खोटी बातें क्यों सुनने लगे?

कोई महात्मा तो ऐसे हुए जिन्होंने जगत को बनाया, कोई ऐसे हुए जिन्होंने इसका भार उठाया, कोई ऐसे हुए जिन्होंने इसे जीत कर अपनी मुट्ठी में तो किया, पर इसे तुच्छ समझ औरों को दे डाला। कोई कोई ऐसे भी हैं जो चौदहों भुवनों का पालन करते हैं; और इसी संसार में ऐसे लोग भी हैं जो इने गिने गाँवों की ठकुराई पा कर, सदा अभिमान के नशे में चूर रहते हैं।

हे राजन्! अगर आप समझते हों कि हम राजा हैं, हमारा पद बड़ा है, तो हम कहते हैं, हमने भी गुरु की सेवा कर विद्या पढ़ी है और ऊँचे पद को पाया है। यदि आप कहे कि आप धनवान् होने से प्रसिद्ध हैं, तो हमारी विद्या बुद्धि का यश कवि लोग दशों दिशाओं में गाया करते हैं। इसलिये हे राजन्!

आपमें और हम में अन्तर ही क्या है ? अगर आप हमारी ओर से मुँह फेरते हैं, तो हमारा क्या अटका है जो हम तुम्हारी ओर देखें ।

सैकड़ों राजा इस पृथिवी को अपनी अपनी समझ कर जब रीते हाथों चले गये, तब यदि पृथिवी का अधिकार मिला ही तो किस काम का ? इसलिये राजाओं को पृथिवी-पति होने पर अभिमान न करना चाहिये । किन्तु देखा जाता है कि आज कल तो ज़रा ज़रा सी ग्रामड़ियों के ठाकुर भी अपने को भूपति समझे बैठे हैं । जिस बात से इनको लज्जित होना चाहिये था उससे ये मूर्ख फूले नहीं समाते । यह बड़े आश्चर्य्य की बात है ।

यह पृथिवी एक मिट्टी का ढेला है जो पानी की रेखा से घिरा हुआ है । पहिले तो यह पृथिवी आपही छोटी सी है, तिस पर अनेक राजा आपस में लड़ झगड़ कर उसके सैकड़ों हिस्से कर डालते हैं और ज़रा ज़रा से टुकड़ों पर अधिकार जमा राजा बन बैठते हैं, जो लोग ऐसे ओछे धनियों से धन पाने की इच्छा रखते हैं, उन अधम पुरुषों को धिक्कार है ।

न तो हम नट हैं, न गवैये हैं, और न हमें इधर की बात उधर और उधर की बात इधर लगा कर लोगों को प्रसन्न करने की विद्या आती है, फिर भला बड़े आदमियों के घरों में हमें कौन पूँछेगा ?

पहिले जो विद्या पण्डितों के चित्त का क्लेश दूर करती थी, वह इस काम में लायी जाने लगी कि विद्या के द्वारा राजाओं को प्रसन्न कर उनसे धन वसूल किया जाय । पर इस समय राजाओं को भी इतनी फुरसत नहीं कि वे विद्या महिमा पर

रीझें। इसलिये ऊँचे लोगों से तिरस्कृत होने पर विद्या की दिनों दिन अवनति होती जाती है। यह बड़े दुःख की बात है।

पहिले समय में ऐसे लोग थे, जिनकी खोपड़ियों की माला बना कर, भूषण की तरह शिव जी ने धारण की—पर अब ऐसे लोगों की संख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है जो अपने नौकरों चाकरों के मुख से अपनी प्रशंसा सुन सदा अभिमान के ज्वर से घिरे रहते हैं।

अगर तुम धन के मालिक हो तो हम विद्या के भाण्डार के मालिक हैं। अगर तुम लड़ाई लड़ने में बहादुर हो, तो हम भी शास्त्रार्थ करने वालों के अभिमान रूपी ज्वर को उतारने वाले हैं। अगर तुम्हारी सेवा करने में धन के भिखारी लगे रहते हैं, तो हमारी भी वे लोग रात दिन टहल किया करते हैं जिन्हें अपना अज्ञान हटाने की चिन्ता है। अरे राजा! अगर तुमको हम में श्रद्धा नहीं है, तो हमको तुम्हारी परवाह ही क्या है। लो हम जाते हैं।

जब गाँठ में टका तक न रहे, माँगने वाले आ आ कर खाली हाथ लौट जाने लगें, कुटुम्बी भी कोई न रहे, तब बुद्धिमान को चाहिये कि वह गङ्गा के किनारे किसी पहाड़ की गुफा में बैठ कर ईश्वर का स्मरण करे।

हे मन! न जाने तू क्यों और की सेवा कर के उनको प्रसन्न करना चाहता है। तेरा ऐसा करना सरासर व्यर्थ है। क्योंकि अगर तू दूसरों की सेवा छोड़ कर शान्ति और सन्तोष धारण करले, तो तेरी सारी मनोकामना अपने आप छूट जाँय और तू सदा मग्न रहा करे और तेरे सब मनोरथ भी पूरे हो जाँय।

भाई ! बड़े दुःख की बात है ! जिन चक्रवर्ती राजाओं की राजसभाओं की बड़ी धूमधाम थी, जिनकी चन्द्रमुखी रानियाँ थीं, जिनके बलवान् पुत्र थे, जिनके पास अच्छे अच्छे बन्दिगण रहते थे और जिनके सामने अच्छी अच्छी कथायें हुआ करती थीं—वे राजा लोग भी, जिस काल के वश में हो कर केवल सपना यादगार छोड़ गये—उस काल को हमारा प्रणाम है।

जिस घर में पहले अनेक लोग रहते थे वहाँ अब एक ही दिखलाई पड़ता है। जिस में पहले एक मनुष्य था उसमें अब अनेक जन दिखलाई देते हैं और जिसमें किसी समय बहुत जन रहते थे, उसमें अब एक भी दिखलाई नहीं पड़ता। इस ढंग से अनेक कलाओं वाला काल, रात दिन रूपी दो पाँसों को फेंक कर और आदमियों को गोट बना कर, चौपड़ खेल रहा है।

आशा नाम एक नदी है, उसमें मनोरथ रूपी जल भरा हुआ है। उस जल में तृष्णा रूपी लहरें लहरा रही हैं। प्रीति या राग, उसमें मगर हैं, तरह तरह के तर्क उसके तट पर बैठे हुए पक्षी हैं। उस नदी का तीव्र-प्रवाह धैर्य रूपी पेड़ को गिराने वाला है। मोह रूपी भौंर उसमें पड़ रहे हैं। इस से उसका पार होना सहल नहीं है। बड़ी बड़ी चिन्तायें उस नदी के किनारे हैं। इस नदी के पार पहुँचने वाले पवित्र विचार वाले योगी ही आनन्द पाते हैं।

जब से यह संसार रचा गया है, तब से लगा कर, आज लौं हमें ऐसा कोई भी मनुष्य मिला और न हमने ऐसे का नाम ही सुना, जो इस मन रूपी उन्मत्त हाथी को अपने वस में रख सके।

जिस मनुष्य ने निष्कलङ्क विद्या नहीं पढ़ी, जिसने धन भी इकट्ठा नहीं किया और जिसने माता पिता की भले प्रकार सेवा

भी नहीं की—उसने इस संसार में जन्म लेकर, दूसरों के टुकड़े पाने की इच्छा में, कौए की तरह मानों सारा जीवन व्यर्थ ही खो डाला।

जितना सन्तोष हमें वृक्ष के वक्कल पहनने से होता है, हे धनियों! उतना ही तुम्हे बढ़िया कपड़े पहनने से होता है। इस लिये हमारा और तुम्हारा सन्तोष सब तरह से एक ही सा ठहरा। अर्थात् हम में तुम में कुछ भी भेद नहीं है। असल में दरिद्री तो वह है जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई हैं, जब मन सन्तुष्ट है. तब धनी और निर्धन एक ही से हैं।

नीचे लिखी छः बातें बड़ा तप करने से मिलती हैं—

१—स्वाधीन हो कर सब जगह आना जाना, २—बिना माँगे भोजन पाना, ३—सज्जनों के साथ रहना, ४—शान्ति देने वाले शास्त्रों को सुनना, ५—बाहरी विषयों में मन का न फँसाना और ६—जो काम किया जाय, उसका अच्छा बुरा परिणाम पहिले ही भली प्रकार सोच विचार कर करना।

स्वामी की सेवा करनी बड़ी कठिन है। राजों का चित्त, तेज़ दौड़ने वाले घोड़े की तरह चञ्चल होता है, इस लिये वे भी सेवा करने योग्य नहीं हैं। हमारी इच्छा बड़ी है, इस लिये हमने तो मोक्ष रूपी सब से बड़ा अधिकार पाने के प्रयत्न में अपना मन लगा लिया है। बुढ़ापे से देह की सारा सुन्दरता नष्ट हो जाती है और मौत तो जीवन का अन्त ही कर देती है। इस-लिये जो विद्वान् हैं उनके लिये तप को छोड़ दूसरा कल्याण का मार्ग है ही नहीं।

प्राणियों को हिंसा न करना, सदा सच्च बोलना, दूसरों का धन मुसने की इच्छा न करना, यथाशक्ति समय समय पर

दान देना, पराई स्त्री से कभी बात न करना, तृष्णा के सोते को सुखाना, माता, पिता, आचार्य और गुरु के सामने सदा नम्र रहना और सब प्राणियों पर दया रखना—सब शास्त्रों में, इन बातों के मानने वाले को मोक्ष का अधिकारी माना है। इसलिये मोक्ष चाहने वालों को सदा इन पर चलना चाहिये।

जो सन्त जन हैं, क्या उनके रहने के लिये हवेलियों का टोटा था और क्या उनके कानों को तृप्त करने के लिये उत्तम उत्तम गीतों का अभाव था? नहीं—अभाव न था। पर उन लोगों ने इस जगत को; दीपक की हिलती हुई छाया में, मूर्ख पतङ्ग की तरह मनुष्यों को मारने के लिये तैयार देख, संसार को छोड़ दिया और वे वन में जा बसे।

प्रलय काल के अग्नि का मारा हुआ सुमेरु जब गिर पड़ता है और जब वह समुद्र भी सूख जाता है जिसमें बड़े बड़े मगर रहते हैं और जब पर्वतों के पैरों से दबी हुई पृथिवी भी नष्ट हो जाती है, तब हमारा यह शरीर जो हाथी के बच्चे के कान की कोर के समान छोटा है किस गिनती में है? अर्थात् यह भी नष्ट हो ही जायगा।

इस नाश होने वाले मनुष्यों ने सब कामनाओं को पूरी करने वाली लक्ष्मी (धन) पायी भी तो क्या? शत्रुओं के सिर पर पैर रखा तो क्या? धन से मित्रों का सन्मान किया तो क्या? यदि बहुत दिनों लों, बिना परलोक बनाये जीवित रहे तो क्या? पीताम्बर पहना तो क्या? गुदड़ी लपेटी तो क्या? घोड़े हाथी सहित अनेक स्त्रियाँ रहीं तो क्या? दोनों जून बढ़िया भोजन किये तो क्या? और सारे दिन परिश्रम कर सायङ्काल को एक बार रूखा सूखा अन्न खाया तो क्या? अर्थात् मनुष्य को इस संसार का

सारा वैभव मिल भी जाय और यदि उसके हृदय में ब्रह्म की ज्योति का प्रकाश न हुआ तो उसका सारा वैभव धूल के समान वृथा है।

हे मन! तू अपनी चञ्चलता से पाताल में घुस जाता है। आकाश को नाँघ कर उसके दूसरे पार पहुँच जाता है। कहाँ तक गिनावें जहाँ हवा भी नहीं जा सकती वहाँ तू चला जाता है; पर अपने हृदय में बैठे हुए भगवान् के समीप तू क्यों नहीं जाता?

हे जीव! जिन भगवान् के ज्ञान के आगे तीनों लोकों का राज्य तुच्छ है—उस ज्ञान को पाने के लिये तू उद्योग क्यों नहीं करता? संसार के झूठे झमेलों में तू क्यों अटका पड़ा है? जिस को भगवान् की आराधना में प्रीति उत्पन्न हो चुकी है, उसे राज्य आदि के भोग नीरस और बुरे मालूम पड़ते हैं।

जब तक यह शरीर निरोग और दृढ़ बना है और बुढ़ापा नहीं आया और इन्द्रियों में शक्ति बनी हुई है और आयु बची है तब तक विद्वान् को चाहिये कि अपनी भलाई का प्रयत्न भली भाँति कर ले। जब घर जलने लगा, तब कुआँ खोदने से क्या होता है?

पर्वतों की चट्टाने जिनकी सेजें है, गुफा जिनके घर हैं, वृक्षों के वल्कल ही जिनके वस्त्र और जङ्गली हिरन जिनके मित्र हैं जो जङ्गल के फलों को खाते और झरनों के स्वच्छ जल को पीते हैं, जिनकी विद्या रूपी स्त्री ही से प्रीति है और जिन पुरुषों ने नौकरी करने के लिये औरों को प्रणाम (सलाम) नहीं किया, उन पुरुषों को हम परमेश्वर मानते हैं।

जो उत्तम पुरुष, पर्वत की कन्दरा में बसते हैं, जो सदा भगवान् का ध्यान किया करते हैं, जिनकी गोद में निडर बैठ कर पक्षी आनन्द से आंसुओं का जल पीते हैं—वे धन्य हैं। हम लोगों को धिक्कार है जो सदा बुरे व्यसनों के खिलौने बन कर व्यर्थ अपनी आयु नष्ट कर रहे हैं।

इस संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे किसी न किसी ने ग्रास न कर लिया हो। मृत्यु ने जन्म को बुढ़ौती ने जवानी को, धन की इच्छा ने सन्तोष को, दूसरे की बढ़ती न सह सकने वालों ने गुणों को, साँप और भयानक पशुओं ने पृथिवी को, बुरे लोगों ने राजा को और चञ्चलता ने धैर्य्य को ग्रास कर रखा है।

मनुष्यों की आरोग्यता को सैकड़ों तरह की मानसिक और शारीरिक रोग व्याधियों ने नष्ट कर डाला है। जहाँ द्रव्य अधिक होता है, वहाँ विपत्ति भी आकाश से टूट पड़ती है। जो इस संसार में जन्म लेता है उसे मौत शीघ्र अपने वश में कर लेती है। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे विधाता ने, सदा बनी रहने वाली बनाई हो, संसार के सारे पदार्थ नाशवान हैं।

पहले तो आदमी की आयु ही सौ वर्ष की ठहरायी गयी है, उसमें से आधी अवस्था अर्थात् पचास वर्ष, सोने में बीत जाती है। बचे पचास वर्ष। इनके दो भाग पचीस पचीस वर्ष के करो। इनमें से पहला भाग तो गधा पचीसी (खेल कूद) में निकल जाता है। दूसरा भाग नौकरी-चाकरी, बीमारी और प्रियजनों के वियोग के दुःख में बीत जाता है। मनुष्य की सौ वर्ष की आयु होने पर भी, इस हिसाब से उसके सुख के दिन

इने गिने ही निकलते हैं। सच तो यह है कि प्राणियों को सुख तो मिलता ही नहीं।

ब्रह्म-ज्ञान के विवेकी सज्जन, बड़े व्रतों को धारण कर संसार के सारे सुख भोग की सामग्री छोड़ बैठते हैं, और परमेश्वर के ध्यान में मग्न हो जाते हैं। हमें सुख भोग की सामग्री (सोना, चाँदी, गाड़ी, घोड़ा, नौकर चाकर आदि) न तो कभी प्राप्त हुई और न प्राप्त है और न प्राप्त होवे होगी, पर तो भी हम ऐसे अज्ञानी मूढ़ हैं कि इन वस्तुओं के मिलने की आशा में फँस कर, हम इन वस्तुओं के पाने की आशा भी नहीं छोड़ पाते, यह कैसे अचम्भे की बात है ?

बुढ़ापा बाघ की तरह सामने खड़ा गुर्रा रहा है। तरह तरह के रोग वैरी की तरह शरीर पर चोटें मार रहे हैं। जैसे फूटे घड़े से पानी चू कर, धीरे धीरे निकल जाता है, वैसे ही मनुष्य की आयु धीरे धीरे नष्ट होती जाती है। बड़े आश्चर्य की बात है कि मनुष्य ये सब बातें जान कर भी अपनी भलाई के लिये उद्योग नहीं करता। सदा अपनी बुराई करने ही में लगा रहता है।

विधाता कैसा मूर्ख है कि उसने मनुष्य को सब गुणों की खान और पृथिवी का भूषण बना कर भी, उसे बहुत थोड़ी आयु दी। मनुष्य जैसे गुणों में सब से बड़ा है वैसे ही उसे सब से अधिक आयु मिलनी चाहती थी।

शरीर की खाल में झुर्रियां पड़ने लगी, चलने फिरने की शक्ति भी नहीं रही, मुख पोपला होगया, दाँत नहीं रहे, सुनाई भी ऊँचा देने लगा, मुँह से राल गिरने लगी, घर वाले कहा नहीं मानते, अपनी भार्य्या भी भली भाँति अपनी सेवा नहीं

करती और जो अपना उत्पन्न किया हुआ पुत्र है ; वह भी अपना वैरी हो रहा है। इससे बढ़ कर और दुःख की बात क्या हो सकता है।

यह मनुष्य क्षण में बालक, क्षण में युवा, क्षण में धनी और क्षण में निर्धन हो जाता है। फिर थोड़े दिनों बाद उसे बुढ़ापा घेर लेता है। यह मनुष्य बहुरूपियों जैसे नाना प्रकार के खेल खेल कर, पीछे से यम-पुरी की ओट में जा छिपता है।

सच्चरित्र बनने के उपाय

माता पिता चाहे पढ़े लिखे हों या न हों, पर पुत्र का कर्त्तव्य है कि उनकी सेवा सुश्रूषा में कमी न करै। माता, पिता, बड़े भाई और गुरु के साथ सदा नम्र-भाव से वर्तना चाहिये।

जात बिरादरी के लोगों के साथ, छल कपट छोड़ कर, सज्जनता का वर्ताव रखना चाहिये और जिसने अपने साथ कभी कोई भलाई का काम किया हो उसका सदा गुन मानना चाहिये।

पड़ोसियों के साथ छेड़ छाड़ न करनी चाहिये। उनके साथ हेल मेल रखना चाहिये। लड़ाई झगड़ों को जहां तक बचा सको बचाओ।

किसान और व्यवसाइयों (पेशेवालों) को घृणा की दृष्टि से न देखना चाहिये। क्योंकि वे तुम्हें तुम्हारा जीवन बनाये

रखने वाले पदार्थ अन्न और वस्त्र देते हैं। वे तुम्हारे साथ परम स्नेही मित्र जैसा व्यवहार करते हैं।

अगर तुम बुरे कामों में रुपये उठाओगे तो तुम्हें रुपये कमाने के लिये, बुरे काम करने पड़ेंगे। जो लोग सोच विचार कर रुपये उठाते हैं, उन्हें रुपयों की तङ्गी नहीं होती।

मदर्से और कालेज तोता-रटन्त के लिये नहीं बनाये जाते। वे तुम्हें सच्चरित्र (अच्छे चाल चलन वाला) बनने के लिये खोले गये हैं। अगर मदर्से और कालेज में रह कर तुम्हारा चाल चलन न बना और बुरा हो गया, तो समझना चाहिये कि तुम्हारा सैकड़ों किताबों का पढ़ना व्यर्थ गया।

बड़ाई उसी आदमी की होती है जो अपने देश की चाल ढाल को नहीं छोड़ता। इस लिये तुम्हें दूसरों की चाल-ढाल, रीति नीति, आहार-व्यवहार आदि का कभी अनुकरण (नक़ल) न करना चाहिये।

हरएक जाति की पहिचान उस जाति वालों के भोजन, भाषा, पहिनाव और धर्म ही से होती है। यदि ये चारों बातें अपनी जाति और अपने देशवालों जैसी न हुई तो जातीयपना मारा जाता है।

ऐसी सभ्यता से तुम्हें सदा दूर रहना चाहिये जिससे तुम्हारा धर्म्म और सदाचार बिगड़ता हो।

ऐसे कामों को अपनी हानि सह कर भी करना चाहिये, जिनसे बहुतों का लाभ होता हो।

अगर तुम किसी के मुँह से किसी की निन्दा सुनो, तो उसे घर घर मत फैलाओ। क्योंकि निन्दा करने से वाणी अपवित्र होती है।

दुष्ट लोगों को किसी तरह की भी सहायता मत दो। क्योंकि वे सज्जनों को दुःख दिया करते हैं।

दूसरों को उपदेश देने के पहिले तुम अपने मन में यह तो विचार लो कि तुम स्वयं उसके अनुसार बर्ताव करते हो कि नहीं। क्योंकि मुँह से कहने की अपेक्षा (बनिस्बत) करके दिखला देने से अधिक प्रभाव पड़ता है।

अपने घर का, मित्र का और कुटुम्ब का भीतरी हाल हर-एक से मत कहो।

जिस बात को तुमने पक्की तरह से न जान लिया हो, उसे किसी से मत कहो।

तुम्हारे घर पर यदि तुम्हारा शत्रु आवे तो उसका भी तुम्हें आदर करना चाहिये। घर आये हुए मेहमान का सज्जन कभी अनादर नहीं करते।

अच्छे कामों में हाथ डालना बुरा नहीं है, पर उन कामों को पूरा किये बिना, उन्हें प्रकाश (ज़ाहिर) करना बुरा है।

कड़ी और फूहड़ (अश्लील) बात किसी से मत कहो।

कहने सुनने से भी अधिक भोजन मत करो और न सङ्कोच में पड़ कर भोजन करते समय भूखे बने रहो।

यदि कोई मनुष्य दूसरे से बातें करता हो, तो उस समय तुम्हें बात काट कर, उसे टोंकना न चाहिये।

जो लोग तुम से नाते और पद में बड़े हैं—उनके साथ कभी हँसी ठट्ठा न करना चाहिये। यदि वे तुम पर कृपा करें और तुम्हारे सामने कोई हँसी की बात कहें, तो तुम्हें उसका उत्तर न देना चाहिये। उस समय तुम्हारा मुसकुरा कर चुप हो जाना ही अच्छा है।

सो कर उठते ही दिन भर करने योग्य कामों के करने का विचार ठीक ठीक कर लो और सोने के पहले दिन भर के किये हुए कामों की भलाई बुराई की छान बीन करो।

तुम दूसरों के साथ जो उपकार (सलूक) करो, उसे तो भूल जाओ, पर तुम्हारे साथ यदि कोई उपकार करे, तो उसे कभी मत भूलो। अपकार करने वालों को क्षमा करो।

घर में ऐसे नौकर मत रखो, जो लँगड़े, लूले, अन्धे, बहरे और जन्म के रोगी हों। ऐसे नौकर भी न रखने चाहिये जो बड़े ख़ुशामदी हों और घर का भेद खोलने वाले हों।

दूसरे के नाम की चिट्ठी बिना पढ़ाये मत पढ़ो।

क्रोध आने पर किसी से मत बोलो। क्योंकि क्रोधी मनुष्य बहुत सी अण्डबण्ड बातें बक जाया करते हैं।

जब कभी घर छोड़ कर परदेश में जाना पड़े, तब अपने साथ कुछ फालतू रुपये, एक अँगूठी और एक चाक़ू अवश्य रखो।

बहस करते समय अपनी ही मत गाये जाओ, दूसरे की बातों पर ध्यान दो।

जो शास्त्र पढ़ कर दूसरों को उपदेश देने में बड़ा प्रवीण हो और स्वयं उसके अनुसार काम न करता हो, उसे अन्धे के हाथ का दीपक समझना चाहिये।

जो मनुष्य दूसरों की निन्दा तुम्हारे सामने करता है, वह तुम्हारी निन्दा भी दूसरों के सामने अवश्य करता होगा। ऐसे मनुष्यों से सदा सावधान रहना चाहिये।

एक वाणी को अपने क़ाबू में करने से हज़ारों मनुष्य अपने हो जाते हैं और मन को अपने वश में करने वाला चाहें तो तीनों लोकों को जीत सकता है।

मनुष्यों को पुस्तकें पढ़ने में रुचि होना चाहिये। पर पुस्तकें ऐसी होनी चाहिये जिनके पढ़ने में मन निर्मल हो, अच्छे कामों के करने का हौसला बढ़े, साँसारिक व्यवहार और ईश्वर का ज्ञान समझ में आवे, उपकार के कामों में मन लगे और सुमार्ग में चलने की रुचि उत्पन्न हो।

क्रोध आने पर विद्वान् की, लड़ाई के मैदान में वीर की और विपत्ति पड़ने पर मित्र की परख होती है।

जो मनुष्य दूसरों की हानि का समाचार सुन प्रसन्न होता हो, उसे महानीच समझना चाहिये।

ऐसे लोगों की राय कभी न लो, जो 'सिवाय आपकी राय बहुत दुरुस्त' कहने के, दूसरी बात ही न कह सकते हों। ऐसे लोग भी सम्मति देने योग्य नहीं समझे जाते, जिन्हें हर एक बात में खुचड़ निकालने का अभ्यास पड़ा हुआ है।

बड़े बूढ़ों की बात हँसी में न डालना चाहिये।

जिससे तुम्हारा बहुत हेलमेल हो अथवा जो तुम्हारा हितू व्योहारी हो, उससे कभी उधार मत काढ़ो। रुपये पैसे का लेन देन करने से अक्सर मन पर मैलापन चढ़ जाता है।

बुद्धिमान् दूसरों को बुरे कर्मों का फल भोगते देख सावधान हो जाते हैं।

दूसरे अपराधियों को तो क्षमा कर दो, पर यदि तुम्हारा मन कोई अपराध करे, तो उसे दण्ड दो और अच्छी तरह धिक्कारो।

विपत्ति पड़ने पर घबड़ाना न चाहिये। जो अपने से बड़े हों उनसे दूर करने का उपाय पूँछना चाहिये।

यदि कोई उदार-चरित्र महात्मा तुमसे तुम्हारे किसी काम से अप्रसन्न हो जाँय, तो तुम्हें चाहिये कि जैसे बने वैसे नम्र वचनों से उन्हें राज़ी करलो। महात्माओं का स्वभाव दूध की तरह होता है। जैसे उफनता हुआ दूध, ठण्डे पानी के छीटों से बैठ जाता है, वैसे ही नम्र वचनों से वे भी तुरन्त प्रसन्न हो जाते हैं।

अग्नि सबल है और दीपक निबल है। इसलिये पवन सबल अग्नि को तो प्रज्वलित कर देता हैं और निबल दीपक को बुझा देता है। तुम्हें पवन का अनुकरण न करना चाहिये। निबलों की सदा सहायता करनी चाहिये।

हंस और बगले का रङ्ग सफ़ेद होता है, पर उन दोनों में अन्तर उसी समय मालूम पड़ता है; जब पानी और दूध को बिलगाने का समय आता है। शरीर की बनत में, मूर्ख और विद्वान् में कुछ भी अन्तर नहीं है, पर जो विद्वान् होता है वह हँस की तरह जल रूपी निन्दा को छोड़ कर, दूध रूपी दूसरे के गुणों को ग्रहण करता है। मूर्ख इसके विपरीत आचरण करता है।

ऐसी सभाओं में जहाँ धर्म्म, नीत अथवा ज्ञान का उपदेश दिया जाता हो, बिना बुलाये जाने में हानि नहीं, पर बड़े आदमियों के घर बिना बुलाये न जाना चाहिये।

जिस फल अथवा फूल का गुण दोष तुम्हें न मालूम हो, उसे न तो खाना ही चाहिये और न सूँघना ही चाहिये।

घर की सजावट के लिये या अपना मन प्रसन्न करने के लिये चिड़ियों को पिंजड़े में बन्द कर न रखना चाहिये।

जो वस्तु तुम्हारी है उसे तभी तक अपनी समझो जब तक वह तुम्हारे पास है। दूसरे के हाथ में पड़ी हुई तुम्हारी वस्तु, काम पड़ने पर कभी तुम्हारे काम नहीं आ सकती। काम आना तो दूर रहा उससे तुम्हारा नुकसान भी हो सकता है। जैसे तुम्हारी ही तलवार तुम्हारी होने पर भी, वैरी के हाथ में पड़ने से तुम्हारा सिर काट सकती है।

अपनी लेखिनी, पुस्तक और स्त्री, दूसरों को न देना चाहिये।

यह कोई नियम नहीं है कि अच्छे कुल के सभी लोग अच्छे और बुरे कुल के सभी बुरे होते हैं। अक्सर इस नियम के विपरीत उदाहरण देखे जाते हैं। उज्वल दीपक से काजल और कीचड़ से कैसा सुन्दर कमल उत्पन्न होता है।

अपने से अधिक पढ़े लिखे दूसरे धर्म्मवालों से धर्म विषय पर कभी बहस मत करो।

कोई भी क्यों न हो, उसे किये कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। सब कालिखों का धोने वाला समुद्र जिसका पिता हो—वह चन्द्रमा कलङ्की ही बना रहे—यह कर्म्म की महिमा है।

यदि किसी से मिलने जाओ और वह काम में लगा हो, तो उसके साथ बहुत बातचीत मत करो और उसके पास अधिक मत बैठो। क्योंकि बातें करने से उसका नुकसान होगा।

दोनों पैर सदा गर्म रहने चाहिये। सिर को ठण्डा और पेट को साफ रखे। ऐसा करने से शरीर अच्छा रहता है और मनुष्य को बीमारी नहीं होती।

जिसने सब धर्म्मशास्त्र पढ़े हैं वह पण्डित नहीं है। जो सकल शास्त्र प्रतिपाद्य भगवान् का भक्त है—वही पण्डित है।

जो लोग सदा प्रसन्न चित रहते हैं उन पर ईश्वर की बड़ी दया समझनी चाहिये।

सदा भक्तों की सङ्गत करनी चाहिये। नास्तिक के पास फटकना भी न चाहिये। गन्धी की दूकान पर बैठने वाले का चित्त तरह तरह की सुगन्धों द्वारा प्रसन्न होता है और लुहार की दूकान पर बैठने से कपड़ों में कोयलों की कालौंच लगती है और आग की चिनगारियों से जल जाने का डर रहता है।

शत्रु को कभी छोटा मत समझो। आग की छोटी से छोटी चिनगारी तृण के ढेरों को जलाने की सामर्थ्य रखती है।

जिस समय किसी की निन्दा करने को जी चाहे, उस समय हृदय के किवाड़ खोल कर अपने कुकर्मों को देख लिया करो।

पराई बातों में अपना समय मत गँवाओ। अपने कर्त्तव्य कर्मों को पूरा करने का समय तो मनुष्यों को मिलता ही नहीं। दूसरे के झमेले मुड़ियाना अच्छा नहीं।

दूसरों की सुन्दरता और सज्जनता देखने की इच्छा भी करो। पहिले स्वयं सज्जन एवम् सुन्दर बनो। क्योंकि अगर तुम आप न हँसोगे तो दूसरों को कैसे हँसाओगे।

जब तुम आप भगवान् के प्रेम में डूब कर, रोते रोते लोटने लगोगे तो तुम्हारी देखा देखी दूसरे लोग भी तुम्हारे रङ्ग में रङ्ग जायँगे। यदि दूसरे के शरीर का मैल छुड़ाना हो तो पहिले अपने शरीर का मैल छुड़ाओ।

जिस काम को तुम स्वयं नहीं कर सकते उसे यदि दूसरे लोग न कर सकें, तो उनकी निन्दा (हजो) मत करो। यदि किसी की कोई बात तुम्हें न रुचे, तो उसे अपनी तरह असमर्थ समझ के दुःखित हो दया करो, पर घृणा करना ठीक नहीं।

२—ईश्वर
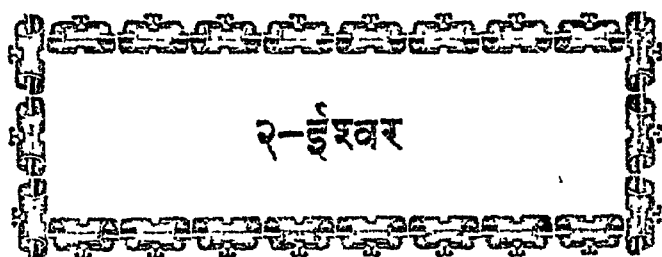
कर्त्ता के विना कर्म नहीं हो सकता। किसी निर्जन वन में देवता की मूर्त्ति है और मूर्त्ति वनाने वाला वहाँ मौजूद नहीं है। तो भी उस मूर्त्ति के वनाने वाले कारीगर का होना लोग मान लेते हैं। इसी तरह संसार को देख कर, हम संसार के वनाने वाले ईश्वर का होना मान लेते हैं।

यदि ईश्वर दिखलाई न दे, तो उसके होने को मेंटना उचित नहीं। आकाश में लाखों तरागण हैं, पर दिन में वे नहीं दिखलाई पड़ते। इसलिये तारागण का न होना कोई भी बुद्धिमान् आदमी नहीं मान सकता।

दूध में मक्खन है। किन्तु दूध को देख कर, दूध में मक्खन है कि नहीं—यह वात वालक निश्चय नहीं कर सकते। इसलिये दूध को मक्खन-रहित समझना ठीक नहीं। यदि मक्खन को देखने और खाने का चाव है, तो पहले कर्म करके दूध को मथो; तव मक्खन हाथ लगेगा और उसके खाने से शरीर पुष्ट भी होगा।

समुद्र के जल की थाह नहीं है। जल के भीतर क्या है क्या नहीं है, इस वात को कोई भी नहीं कह सकता। ऐसी दशा में क्या यह कहना ठीक होगा कि समुद्र में कुछ है ही नहीं? यदि

कोई इस बात को जानने के लिये विकल हो तो उसे समुद्र के तट पर घूमना चाहिये। सम्भव है कभी न कभी उसे मछली या और कोई जन्तु जल पर उतराता दिखलाई पड़े। नहीं तो घर में बैठ कर, समुद्र-तल की खोज करने से क्या लाभ होगा?

ईश्वर ऐसी वस्तु है जो मन और बुद्धि से बहुत दूर है पर वह मन और बुद्धि द्वारा ही जाना भी जाता है।

३—ईश्वर की भक्ति

जो ईश्वर के भक्त हैं और उससे डरते हैं, उनको मृत्यु का भी डर नहीं लगता।

अगर तुम भगवान् से प्रीति करोगे तो तुमसे सब लोग आपही प्रीति करने लगेंगे।

ऐसी जगह धरती आकाश या अधड़ में कोई भी नहीं है, जहाँ भगवान् सत्ता रूप से नहीं है। तुम पर जब कभी और कहीं भी विपत्ति पड़े, तुम उनका ध्यान करो, वे तुम्हारी रक्षा करेंगे।

जो मालिक तुम्हें दिन रात में कभी नहीं भूलता, क्या तुम्हें उसे भूल जाना चाहिये? जो सदा तुम्हारी भलाई करता है, क्या सच्चे जी से उसे न चाहना चाहिये?

यदि सुखी रहना चाहते हो तो आत्मा के सदा भगवान् के प्रेमामृत से सींचो।

४—माया

ईश्वर की एक शक्ति का नाम माया है। जो काम औरों से नहीं हो सकते, उन्हें भी यह कर देती है।

जैसे गँदले पानी में सूर्य की परछाईं नहीं दिखलाई पड़ती, वैसे ही माया—अर्थात् "मैं" और "मेरा" का ज्ञान-जब तक दूर नहीं होता, तब तक ईश्वर का दर्शन नहीं होता।

ईश्वर और जीव के बीच में माया रूपी पर्दा पड़ा है।

५—गुरु

जिसके द्वारा अज्ञान रूपी अँधेरा दूर होकर ज्ञान रूपी प्रकाश फैलता है, उसी को गुरु कहते हैं।

गुरु लाखों मिल जाते हैं, चेला एक भी मिलना कठिन है।
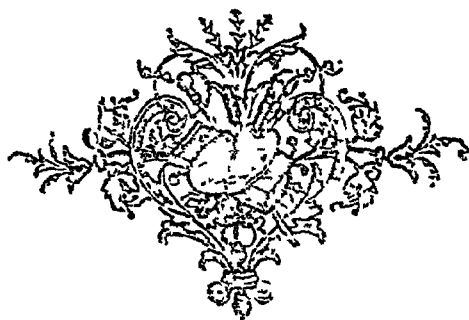
६—हानिकारी कहावतें

सब कहावतें एक सी नहीं होती। बहुत सी कहावतें तो ऐसी हैं, जिनके प्रचार से मनुष्य-समाज की उन्नति होती है और बहुत सी ऐसी भी हैं जिनके प्रचलित होने से समाज में स्वार्थ, अज्ञान, आलस, निरुद्यमपना आदि दोष बढ़ते हैं। ऐसी कहावतें समाज के लिये हानिकारक हैं। उनका प्रचार तभी रुक सकता है, जब उनसे पैदा होने वाली हानियाँ खोल कर समझा दी जांय। उदाहरण के लिये हम ऐसी कुछ कहावतें नीचे लिखे देते हैं।

१—शतं वद मा लिख।

अर्थात् कहो तो सौ बातें, पर लिखो एक भी नहीं। क्योंकि लिखने से आदमी बंध जाता है। यह कहावत नीचे श्रेणी की है। कहना और लिखना एक ही सा है। जिसके कहने का विश्वास नहीं उसके लिखने ही का क्या विश्वास हो सकता है। मनुष्य को जिस तरह खूब समझ बूझ कर लिखना चाहिये, वैसे ही समझ बूझ कर बोलना भी चाहिये।

२—आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि।

अर्थात् अपनी रक्षा धन और स्त्री से भी करनी चाहिये। धन तो आत्मरक्षा के लिये है ही, पर स्त्री द्वारा आत्मरक्षा करना बड़ा स्वार्थपन है।

३—जैसी बहै बयारि पीठ तब तैसी दीजै।

अर्थात् अगर तुम किसी ऐसे नगर में पहुँच जाओ, जहाँ के लोग डाँका डालते हों, हत्या करते हों, जुआ खेलते हों, तो क्या तुम्हें वहाँ के लोगों में मिल जाना चाहिये? कभी नहीं। बुरी बयारि चलने पर लोगों को उससे बचना चाहिये।

४—हूँ है वही जो राम रचि राखा।

यह कहावत लोगों को अकर्मण्य बनाती है। इससे दूसरी कहावत अर्थात् "कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करहि सो तस फल चाखा" का खण्डन होता है। राम जो रचते हैं वह मनुष्यों के किये हुये फलों के अनुसार ही रचते हैं।

५—खरा खेल फ़र्रुख़ाबादी।

यह कहावत लोगों में उजड्डपना उपजाती है। व्यवहार में लगालेस रखना बुरा है, पर ऐसा खरापन भी अच्छा नहीं जो लोगों को बुरा मालूम दे। दूसरे के साथ व्यवहार करते समय छल कपट छोड़ कर बर्त्तो, पर खरे बनने के लिये उद्दण्डता भरी बातें मत कहो।

६—कोउ नृप होइ हमें का हानी, चेरी छाँड़ि न हुइबे रानी।

अर्थात् कोई भी राजा क्यों न हो, हमारे भाग्य में तो सेवा करनी लिखी है, हम दासत्व छोड़ कर कभी उन्नति नहीं कर सकते। यह आलस बढ़ाने वाली कहावत है। परिश्रमी आदमी को कोई वस्तु असम्भव नहीं है। जब योगी लोग कर्म करते करते ईश्वर को पा लेते हैं, तब उससे बढ़ कर ऐसी कौन वस्तु

है जो परिश्रमी मनुष्य को नहीं मिल सकती। सुप्रसिद्ध फराँसीसी योद्धा नेपोलियन बोनापार्ट कहा करता था कि, असम्भव शब्द मूर्खों के कोष में लिखा मिलता है "Impossible is a word which is found in the Dictionary of fools."

इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनमें तुच्छ लोगों का बड़े नामी ग्रामी होने का हाल लिखा गया है।

७—बांबी में हाथ तुम डालो, मंत्र मैं पढ़ूं।

इस कहावत का मतलब यह है कि मरो तुम और तमाशा हम देखें। क्या इससे भी बढ़ कर स्वार्थपने से भरी कोई कहावत हो सकती है?

८—घर की मुर्गी साग बराबर।

यह नहीं। अन्याय लोगों के लिये यह कहावत भले ही अच्छी हो, पर उदार हिन्दुओं को यह कहावत हानिकारी है। जो आदमी घर के लोगों पर अथवा घर की वस्तु पर ममतर मोह नहीं रखता वह बाहिरी वस्तु पर ममता क्यों करने लगा?

९—घड़ी भर की बेशरमी दिन भर का आराम।

भले और शर्मदार आदमी को क्षण भर की बेशरमी मौत के बराबर होती है। फिर दिन भर का आराम कहाँ रहा?

१०—जाको कोड़ा ताको घोड़ा।

यह अन्याय बढ़ाने वाली कहावत है। जिसका घोड़ा उसीका, कोड़ा भी होना चाहिये, यही न्याय है।

११—जिसका भात खाना उसके गीत गाना।

यह किसी खुशामदी की बनायी हुई कहावत है। भात खा लेने पर भी जो न्याय की बात हो वही कहनी चाहिये। खुशामद के लिये या काम पड़ने पर भी, गधे को बाप न बनाना चाहिये।

१२—टुकड़े टुकड़े काम चले, तो मिहनत कौन करे?

जो काम चोर हैं और टुकड़े खाने की जिनको आदत पड़ गई है—वेही इस कहावत को अक्सर कहा करते हैं।

१३—तीन कौर भितर, तब देवता पित्तर।

यह पेटू और खाऊ वीरों की कहावत है।

१४—दिल खोर खाना, सिर फोर लड़ना।

जो लोग पेट पर दया नहीं करते और ठूँस ठूँस कर पेट में भरते हैं, वे बहुत दिनों लो जीते नहीं। इसी तरह जो सिर फोड़ कर लड़ते हैं, वे एक ही बेर की लड़ाई के होते हैं।

१५—दुधारू गाय की लात भली।

लात खाना ही बुरा है चाहे वह दुधार गाय की हो या ठण्ठ की।

१६—पराये पीर को मलीदा, घरके देव को धतूरा।

जो घर ही के देव को नहीं मानता, वह बाहिर के पीर को भी नहीं मानता, बल्कि उन्हें ठगना चाहता है।

१७—बैठे से बेगार भली।

जिन्हें अपने पद और अपनी मर्य्यादा का ख़्याल है, वे कभी अपने पद के विरुद्ध काम नहीं करते। जो हंस मानसरोवर के मोती चुगा करते हैं, वे भूखों मरना पसन्द करते हैं, पर कङ्कड़ नहीं चुगते।

१८—मन चङ्गा तो कठौती में गङ्गा।

मन चाहे जितना चङ्गा हो पर गङ्गा कठौते के जल में नहीं आ सकतीं।

१९—राम नाम जपना, पराया माल अपना।

कदाचित् यह कहावत किसी डाँकू की कही हुई है। राम नाम पराया माल अपनाने को नहीं जपा जाता।

२०—गाँव का योगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध।

इस कहावत के प्रचार से बहुत से बेचारे विद्वानों का अनादर हुआ करता है। जो सिद्ध हैं, जो विद्वान् हैं वे अपने गाँव में रहें या बिराने गाँव में रहें—उनका सर्वत्र ही आदर होना चाहिये। जो विद्वानों का अनादर और बनावटी धूर्त्तों का आदर करते हैं वे पापी हैं।

तृतीय खण्ड
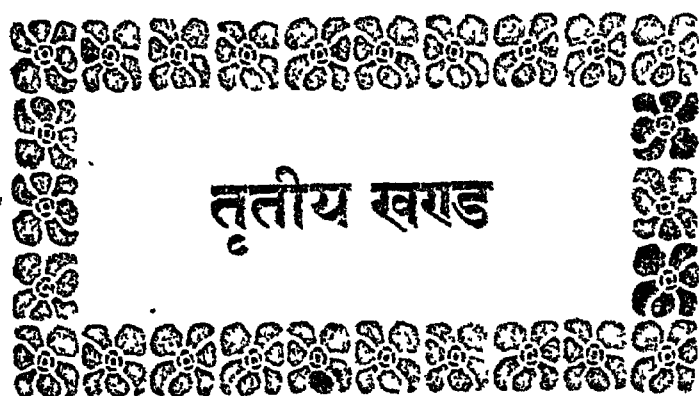
१—युधिष्ठिर और सर्प का संवाद

जिन दिनों पाँचों पाण्डव दबे छिपे वन में रहा करते थे, उन दिनों एक अनूठी घटना हुई। अखेट (शिकार) खेलते समय भीम को एक अजगर साँप ने लिपट कर उनको बाँध लिया।

युधिष्ठिर अपने भाई को छुड़ाने के लिये गये तब साँप ने उनसे कहा कि यदि तुम मेरे प्रश्नों के ठीक ठीक उत्तर दे सकोगे, तो मैं तुम्हारे भाई को छोड़ दूँगा। नीचे के पहिले १६ प्रश्न, सर्प के पूँछे हुए हैं और उनके उत्तर वे ही हैं जो महाराज युधिष्ठिर ने दिये थे।

अन्तिम (आख़री) छः प्रश्नों की कथा यह है। एक अग्नि-होत्री था। उसकी आग जलाने की अरणी (यह एक लकड़ी होती है उसको रगड़ कर, पुराने समय के लोग आग निकाला

करते थे ।) को, एक दिन एक हिरन ले गया । उसको खोजने के लिये जाते हुए पाण्डवों को रास्ते में बहुत प्यास लगी । खोजते खोजते वे एक तालाब के पास पहुँचे, पर उस तालाब के पानी को पीते ही, युधिष्ठिर को छोड़ कर, चारों भाई मर गये ।

जब युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को मरा देखा, तब आकाश वाणी हुई कि "मैं यक्ष हूँ । जो कोई मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना इस तालाब का पानी पीता है, वह मर जाता है । पर जो तू मेरे प्रश्नों का उत्तर दे दे, तो मैं तेरे चारों भाइयों को जिला दूँ । युधिष्ठिर ने वैसा ही कियाँ और उनके चारों भाई जी उठे ।

हम उन बाइसों प्रश्नों को मय उनके उत्तरों के नीचे देते हैं । पहले सोलह प्रश्न तो सर्प के पूँछे हुए हैं और पिछले छः यक्ष के पूँछे हुए हैं । उत्तर बाइसों के महाराज युधिष्ठिर के दिये हुए हैं ।

१ प्रश्न—ब्राह्मण कौन है ?

उत्तर—जिसके तप में छल छिद्र की गन्ध तक नहीं है ।

२ प्र०—शूद्र किसे कहते हैं ?

उ०—जो क्रूर (बुरे) काम करते हैं, वे शूद्र कहलाते हैं । तीनों वेदों का पढ़ने वाला ब्राह्मण ही क्यों न हो—यदि उसके शुद्ध आचरण नहीं हैं, तो वह अवश्य अगले जन्म में शूद्र होगा ।

३ प्र०—मीत (मित्र) किसे कहते हैं ?

उ०—जो अपनी भलाई करे वही मीत है ।

४ प्र०—शत्रु कौन है ?

उ०—जो भले कामों में आलस करता है, वही अपना शत्रु है ।

५ प्र०—पण्डित कौन है ?

उ०—जो जगत से राग द्वेष नहीं रखता ।

६ प्र०—अनारी (मूर्ख) कौन है ?

उ०—जो नास्तिक है।

७ प्र०—वीर कौन है ?

उ०—अपनी इन्द्रियों को जीतने वाला वीर है।

८ प्र०—कायर कौन है ?

उ०—जो स्त्रियों के कटाक्षों से अधीर हो उठता है।

९ प्र०—सत्य किसे कहते हैं ?

उ०—जिससे दूसरे की भलाई हो।

१० प्र०—झूठ किसे कहते हैं ?

उ०—सत्य बात ही क्यों न हो, पर जिसके कहने से कोई दुःख पावे उसे झूठ कहते हैं।

११ प्र०—धर्म्म किसे कहते हैं ?

उ०—पराये देवताओं से द्वेष न रखना, बड़े की बतायी रीति पर चलना, सुपात्र को और दीन दुःखियों को दान देना और बुराई करने वाले को क्षमा करना, यही धर्म्म है।

१२ प्र०—पाप किसे कहते हैं ?

उ०—उपकार करने वाले से द्रोह करना, पूज्यों को प्रभुता का मद दिखलाना, जो अपने ऊपर भरोसा रखे उसे धोखा देना, पाप कहलाता है।

१३ प्र०—सुख क्या है ?

उ०—राग द्वेष आदि से अलग रहना और प्रभू का स्मरण करना।

१४ प्र०—दुःख क्या है।

उ०—राग द्वेष में फँसना और संसार के कामों में अधिक फँसना दुःख है ?

१५ प्र०—मोक्ष क्या है ?

उ०—मन और आत्मा को एक कर लेना मोक्ष है।

१६ प्र०—सांसारिक मनुष्य किसका नाम है ?

उ०—जो राग द्वेष में सदा मन लगाया करते हैं ।

१७ प्र०—देवता कौन कहलाता है ?

उ०—गुरु ने जिसे आत्मा का बोध करा दिया है वही देवता है।

१८ प्र०—दैव किसे कहते हैं ?

उ०—पूर्व जन्म के कर्मों के फल को दैव कहते हैं।

१९ प्र०—धन्यमनुष्य कौन हैं ?

उ०—जिन्होंने इन्द्रियों को अपने हाथ में कर रखा है।

२० प्र०—शुद्ध कौन है ?

उ०—जो सत्य रूपी गङ्गा जल में नित्य स्नान करता है। अर्थात् जो सदा सच बोलता है।

२१ प्र०—असली धन क्या है ?

उ२—सन्तोष।

२२ प्र०—विपत्ति कौन सी हैं ?

उ०—लोभ का बढ़ना ही विपत्ति है।

२—ध्यान देने योग्य बातें

बिना समझे बूझे खर्च करने वाला, सहायक न होने पर भी लड़ाई लड़ने वाला, और बुरे व्यसनों में फँसने वाला मनुष्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

जैसे बूँदों को एकत्र करने से घड़ा भर जाता है, वैसे ही थोड़ा थोड़ा जोड़ने से धन भी बहुत हो जाता है।

नीच लोग धन को चाहते हैं, जो मध्यम जन हैं, वे धन और मान; दोनों वस्तुएं चाहते हैं, पर उत्तम पुरुष मान ही चाहते हैं। क्योंकि अच्छे आदमियों का मान ही धन है।

जिसका मानभङ्ग हो गया हो उसका मर जाना ही भला है। क्योंकि मरते समय केवल एक क्षण के लिये दुःख होता है, पर मान के नाश होने पर सदा दुःख बढ़ता है।

शेर और हाथियों से भरे पूरे वन में रह कर, घास पात खा कर सो रहना और कथड़ी का ओढ़ना भला है, पर भाई बन्दों में धनहीन होकर रहना अच्छा नहीं।

लोभी को धन से, अहङ्कारी को हाथ जोड़, मूर्ख को उसके कथनानुसार वरतने से, और पण्डितों को सचाई से अपने वश में करे।

काम में लगाने पर नौकरों की, दुःख के समय भाई बन्धों की, विपत्ति पड़ने पर मित्र की, और धन के नाश होने पर स्त्री की परीक्षा होती है।

विपत्ति पड़ने पर उसे दूर करने के लिये धन की रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि विपत्ति धनवानों पर भी आया करती है।

झूठ मूठ का उलहना, पुत्र के मरने का दुःख नित्य, सवेरे उठ कर यात्रा करने की चिन्ता और बुरे मालिक की नौकरी सदा मनुष्य के शरीर को बिना अग्नि के जलाया करती हैं।

आलस से विद्या नष्ट होती है। दूसरे के हाथ में गया हुआ धन समय पर काम नहीं आता। बीज की कमी से खेत मारा जाता है और सेनापति के बिना सेना मारी जाती है।

जो विद्या पुस्तकों ही में है और जो धन पराये हाथ में है, काम पड़ने पर न तो वह विद्या काम देती है और न वह धन ही काम में आता है।

मरने जीने में, सुख दुःख भोगते समय दूसरा कोई बटाने वाला नहीं खड़ा होता। "अपनी करनी अपनी भरनी।"

धनवालों के मित्र और धनवालों ही के कुटुम्बी भी हुआ करते हैं। धनवाले की पूँछ भी हर जगह होती है। धन हीन को कोई नहीं पूँछता।

भोजन के पदार्थों की भी निन्दा न करनी चाहिये। सामने भोजनों को रखा देख प्रसन्न होना चाहिये।

मूर्खता और जवानी दुःखदायिनी होती है, पर उतना दुःख नहीं देतीं जितना पराये घर में रहने से दुःख मिलता है।

अमृत का घर और ओषधियों का स्वामी चन्द्रमा सूर्य के मण्डल में जाने से तेज रहित हो जाता है। दूसरे के घर में पड़ा हुआ आदमी कौन ओछा नहीं कहलाता ?

जैसी होनहार होती है वैसी ही बुद्धि भी हो जाती है।

इन्द्रियों को और मन को वश में करके ऐसा काम करना चाहिये जिससे शरीर को दुःख न होने पावे।

मन चाहा सुख तो किसी को मिला नहीं। इसलिये हताश न होना चाहिये। सन्तोष पर भरोसा करना उचित है।

लोभी का माँगने वाला वैरी है मूर्खों का उन्हें समझाने वाला और खोटी स्त्रियों का पति वैरी होता है।

बुरा काम कर चुकने पर पछताने वाले मनुष्य को जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है, वैसी बुद्धि यदि बुरा काम करने के पहिले उपजे—तो फिर कहना ही क्या है ?

धर्म्म कथाओं को सुनने से और श्मशान (मरघट) पर जाने से, जो ज्ञान उत्पन्न होता है, यदि वह सदा बना रहे, तो मनुष्य संसार के बन्धनों में क्यों फँसे ?

मीठी बात बोलने से सब जीव सन्तुष्ट होते हैं। इसलिये सदा मीठे वचन बोलने चाहिये। वचन में दरिद्रपना अच्छा नहीं।

आचार से कुल जाना जाता है। बोली से देश, आदर से प्रीति और शरीर से भोजन जाना जाता है।

मणि धरती पर पड़ा हो काँच सिर पर धरा हो, पर मोल लेने और देने के समय काँच काँच ही है और मणि मणि ही है।

जल अन्न और मीठा बोल ही असल में रत्न हैं। वे मूढ़ हैं जो पत्थर के टुकड़ों को रत्न समझा करते हैं।

अन्न और जल के दान से बढ़ कर, दूसरा दान नहीं है। द्वादशी से बढ़ कर तिथि नहीं है। गायत्री से बढ़ कर दूसरा मंत्र नहीं है और माता से बढ़ कर दूसरा देवता नहीं है।

रानी, गुरु की स्त्री, मित्र की स्त्री, सास और अपनी माता—इन पाँचों को निज माता के समान समझना चाहिये।

लड़की का ब्याह गुणवान् वर के साथ करे, पुत्र को विद्या में लगावे, शत्रु को दुःख दे और मित्र को सदा धर्म्म का उपदेश करे।

बालक के जन्मते समय और उसके पालने पोसने में जो क्लेश माता पिता को होता है—उसका बदला मनुष्य यदि सौ वर्ष जी कर सेवा द्वारा दे तो भी वह यथेष्ट नहीं है।

माता पिता और आचार्य्य को प्रसन्न रखने से सब तपस्या सफल होती है।

इन तीनों की सेवा परम तप है। इनकी आज्ञा बिना कोई दूसरा धर्म्म न करना।

जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर किया, उसने मानों सब धर्म्मों का आदर किया और जिस ने इन तीनों का अनादर किया उसने सारे जगत का अनादर किया।

पिता, यज्ञोपवीतादि संस्कार कराने वाला, विद्या पढ़ाने वाला और भय से बचाने वाला, ये सब पिता के बराबर हैं।

दौरा करने वाला राजा, घूमने फिरने वाला ब्राह्मण, और भ्रमण करने वाला योगी पूजा जाता है, पर स्त्री घूमने फिरने से नष्ट हो जाती है।

जब तालाब में जल होता है, तब हंस और तोते वहाँ बसते हैं, पर जब उसका जल सूख जाता है, तब वे उसे छोड़ कर चल

देते हैं मनुष्य को हँस की तरह न हो जाना चाहिये कि एक वस्तु को वारम्बार छोड़े और वारम्बार ग्रहण करे।

जैसे उपकार करने वाले के साथ उपकार करना चाहिये, वैसे ही मारने वाले को मारना भी चाहिये। मारने वाले को मारना पाप नहीं कहलाता।

भोजन कर के, आतुर होने पर और कपड़े पहन कर, बारम्बार स्नान न करे। आधी रात को और अनजाने तालाब में भी स्नान न करे।

अहेर, पाँसे का खेल, दिन में सोना, दूसरे का दोष कहना, स्त्री की सेवा, शराब पीना, नाचना, गाना, बजाना और वृथा घूमना मना है। इन्हें न करे।

जिसको जिसमें प्रीति होती है, उसीसे उसे भय भी होता है। स्नेह ही दुःख का भाजन है। इसलिये सब दुःखों की जड़ स्नेह को छोड़ कर, सुखी होना चाहिये।

झूठ बोलना, बिना विचारे झटपट काम में लग जाना, छल, मूर्खता, लोभ अपवित्रता और निर्दयापन—ये स्त्रियों के स्वाभाविक दोष हैं।

जिनका दुष्ट स्वभाव होता है, उसको वेद पढ़ने, दान देने, यज्ञ करने और तप करने से कुछ भी फल नहीं मिलता।

पाप करने वाले यह मानते हैं कि हमें कोई नहीं देखता; पर उनके पापों को देवता और उनके भीतर बसने वाला परमात्मा देखा करता है।

जैसे हज़ारों गौओं के झुण्ड में भी बछड़ा अपनी माता को पहचान लेता है, वैसे ही कर्म का फल; हज़ारों कर्त्ताओं के रहते हुए भी, असली करने वाले ही को मिलता है।

सत्य बोलना, प्रिय बोलना, सत्य हो पर प्रिय न हो, तो उसको न बोलना। प्रिय भी हो पर सत्य न हो तो उसे भी न बोलना; यह धर्म्म है।

जप, यज्ञ, होम और बलि का फल नष्ट हो जाता है, पर सत्पात्र में दिये हुये दान का और सब जीवों को अभय देने का फल नहीं घटता।

आयु, कर्म, धन, विद्या और मरण, ये पाँचों बातें गर्भ में बालक के भाग्य पर लिख दी जाती हैं।

भाग्य से रङ्क राजा और राजा रङ्क हो जाया करते हैं।

जो जिसके गुण को नहीं जानता, वह उसकी सदा निन्दा किया करता है। जैसे भिल्लनी गज-मुक्ता को छोड़ कर, घुँघची पहना करती हैं।

खोज कर साधु-सङ्ग करो। जैसे सूर्य्य का प्रकाश रूप-हीन वस्तु को रूपवान् बनाता है, वैसे ही साधुओं की साधुता, बुरे लोगों के जीवन को पवित्र और पुण्य-मय बनाती है।

जिसके साथ रहने से मन में पाप कर्म की वासना उपजे, वे असाधु यानी बुरे लोग हैं। उनसे सदा दूर रहना चाहिये। बुरों के साथ रहने से पाप से घृणा और धर्म्म में प्रीति कम होती है।

किसी के साथ लड़ाई झगड़ा मत करो। क्रोध रोको और सब के साथ सज्जनता का व्यवहार करो।

उपकार करने वाले का अहसान मानो। छोटे से छोटे उपकार को भी मत भूलो। कृतज्ञता की बहिन कृतघ्नता को अपने मन पर मत चढ़ने दो, क्योंकि कृतघ्न को यश और सुख नहीं कहते।

थोड़ा अथवा बहुत, जो कुछ दान करो, श्रद्धा सहित दो। जिसे दान देने से बुरे कामों के करने में उत्साह मिले, उसे भूल कर भी दान न दो

दान देने के लिये अन्याय या बेईमानी से धन पैदा मत करो। ऐसे दान देने से पुण्य नहीं होता; उलटा पाप सिर पर चढ़ता है।

अपना पेट पालने के लिये और अपने आश्रित जनों को पालने पोसने के लिये भी बेईमानी करके टके मत बटोरो। ईश्वर ने जो आज्ञा दी है, उसको पालन करना; इस नाशवान् शरीर की बेइमानी से रक्षा करने की अपेक्षा अधिक महत्व का काम है। यदि अन्याय करके जीना पड़े; तो ऐसे जीने से मरजाना ही अच्छा है और अगर न्याय की रक्षा करने में मरना पड़े तो वह मरना ही हमारा असली जीना है।

रात दिन अपने आपको शिक्षा दो। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखता है—उसे कभी दुःख नहीं भोगने पड़ते।

दूसरों की बढ़ती देख कर जलो मत। दूसरों की बढ़ती देख कर जलना बड़ा पाप है। जो दूसरों की बढ़ती देख कर कुढ़ा करता है, उसको इस संसार में सुख और शान्ति नहीं मिलती। सब की बढ़ती में अपनी बढ़ती समझ कर, सदा प्रसन्न रहना चाहिये।

कर्म के द्वारा जैसी शिक्षा दी जा सकती है; वैसी उपदेश द्वारा नहीं। इसलिये घर के बड़े बूढ़ों को सदा सच्चरित्र होना चाहिये जिससे उनके लड़के वाले सच्चरित्र बनें।

अच्छे लोगों को चाहिये कि वे सत्कार्य्य, ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये करें। दूसरों को दिखलाने और प्रशंसा पाने अथवा श्रेष्ठ कहलाने के लिये जो सत्कर्म्म करते हैं, वे सत्पथ में कभी अटल भाव से नहीं टिक सकते। कभी न कभी उनको अवश्य नीचा देखना पड़ता है।

३—बैरी क्रोध को हराने के उपाय

इस संसार में क्रोध से बढ़ कर मनुष्य का दूसरा कोई शत्रु नहीं है। क्रोध आने हर मनुष्य को अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं रहता। क्रोधी मनुष्य करने अनकरने सभी काम कर बैठता है और कहनी अनकहनी सभी बातें कह डालता है।

जो मनुष्य क्रोध को अपने वश में नहीं कर सकता, वह अपनी अमूल्य मन की शान्ति और शरीर के बल को गँवाता है। जो मनुष्य क्रोध का दास बन जाता है, उसकी पहचान यह है कि वह सदा लटा दुबला बना रहता है। उसके स्वभाव में चिड़-चिड़ापन आ जाता है। इसीलिये हमारे देश के नीति जानने वालों ने क्रोध को मनुष्य का महाशत्रु बतलाया है।

क्रोध को रोकने का एक बड़ा बढ़िया उपाय है। जब कभी तुम्हें किसी पर क्रोध आवे, तब तुम्हे अपने मन से कहना चाहिये—"हे मन! यदि तुम अपनी हानि करने वाले पर क्रोध करना चाहते हो, तो तुम सब बुराइयों की जड़, क्रोध पर ही क्रुद्ध (गुस्सा) क्यों नहीं होते? क्योंकि इस संसार में क्रोध से बढ़ कर, मनुष्य का अनहित करने वाला और कौन हो सकता है? अर्थ, धर्म, काम, और मोक्ष के मिलने में क्रोध ही बाधा डालता है! ऊपर बतलाये उपाय से क्रोध जाता रहता है।

देखा जाता है कि कभी कभी क्रोध यहाँ तक भड़क उठता है कि लोगों में गाली गलौज और घुस्समघुस्से तक की नौबत पहुँच जाती है। इसका फल यह होता है कि ऐसे लोग भले आदमियों की निगाह से गिर जाते हैं। इसलिये मान घटाने वाले क्रोध के वश में कभी न होना चाहिये। यह बड़े लोगों की आज्ञा है।

अगर कोई दूसरा मनुष्य तुम्हारे ऊपर क्रुद्ध हो, तो तुमको यह सोच कर कि—"मैं निर्दोष हूँ, यह नाहक ही मुझ पर क्रोध करता है"—तुम्हें अपने ऊपर क्रोध करने वाले पर कभी क्रोध नहीं करना चाहिये। क्योंकि यदि तुम पक्षपात छोड़ कर विचारो, तो तुम अपने को कभी निर्दोष नहीं कह सकते। जब तक तुम इन्द्रियों के वश में बने हो, तब तक तुम निर्दोष नहीं हो।

दूसरे मनुष्य के अपने ऊपर क्रुद्ध होने पर, स्वयं क्रोध से बचने का एक और सरल उपाय है। जो मनुष्य तुम्हारे ऊपर क्रोध करे—उसे तुम अपना परम हितैषी समझो। तुम्हें उसको धन्यवाद देना चाहिये। क्योंकि तुम्हारे ऊपर क्रुद्ध होने वाला मनुष्य, तुम्हारे छिपे हुए दोषों को, सामने खोल कर, रख देता है, जिससे तुम्हारे मन में, उन दोषों पर घृणा उपजे और तुम उन दोषों से बचो।

तुम्हारा तो वह मनुष्य इतना बड़ा उपकार करता है, पर वह स्वयं क्रोध की अग्नि में अपने मन की अमूल्य शान्ति को स्वाहा करता है। इसलिये अपने उपकार करने वाले का तुम्हें एहसान मानना चाहिये। उसके ऊपर कभी क्रुद्ध न होना चाहिये।

४--उपदेश-सार

भगवान् की कथा में जिनका चित्त लगा है, उनको अन्त काल में भी कष्ट नहीं होता।

अनेक कर्म्म करने वाले जो लोग भगवान् की कथाओं को ध्यान देकर सुनें वे अपनी उन्नति करना चाहते हैं।

भगवान् के भक्तों को सङ्ग की तुलना स्वर्ग से भी नहीं हो सकती। भगवद्भक्तों का सतसङ्ग स्वर्ग से भी बढ़ कर है।

भगवान् की सत्ता सर्वत्र विद्यमान है। किन्तु मनुष्य के आत्मा में उसका अंश अधिक रहता है। यदि कोई उसे देखना चाहे तो उसको अपने हृदय में टटोले।

जैसे मधुर गान करने वाली चिड़ियों के उड़ जाने पर भी उनके गान की मिठास जल्दी नहीं भूलती; वैसे ही धार्मिक लोगों की मृत्यु के पीछे भी उनका मधुर उपदेश सारे मनुष्यों के मनों पर अधिकार जमा लेता है।

जो मनुष्य बुरे कर्म्मों से अलग नहीं होता, जिसकी इन्द्रियों की चञ्चलता नष्ट नहीं हुई, वह मनुष्य केवल ज्ञान के सहारे ईश्वर को नहीं पा सकता।

हे जीव! उठो अज्ञान की नींद को छोड़ो। गुरु के पास जा कर ज्ञान की बातें सीखो।

जो लोग धन इकट्ठा तो करते हैं, पर उसे खाते पीते नहीं और जो लोग पढ़ लिख कर धर्म्म नहीं कमाते—वे पीछे बहुत दुःखी होते हैं।

विद्या का फल धर्म्म—पालन है, पेट का पालना नहीं।

धन विना व्यापार के, विद्या विना विचार के, राजा विना थोड़े आचार के—कभी पुष्ट नहीं होते।

जैसे दुष्टों पर दया करने से सत्पुरुषों को कष्ट पहुँचता है, वैसे ही प्रजा को पीड़ा पहुँचाने वालों को, क्षमा करने से महात्माओं को कष्ट मिलता है।

राजा की मित्रता और बालक की मीठी मीठी बातों पर कभी भरोसा न करो। क्योंकि राजा की मित्रता और बालक की बातें, पलक मारते बदलती हैं।

अपने हर एक भेद को मित्र से मत कहो। मित्र तुम्हारा चाहे कैसा सच्चा मित्र क्यों न हो। हो सकता है कि जो आज तुम्हारा गाढ़ा मित्र है, वह कल तुम्हारा घोर शत्रु हो जाय।

जिस भेद को छिपा रखना चाहते हो उसे किसी से मत कहो। उसे अपने बड़े प्यारे मित्र से भी मत कहो। क्योंकि उस

मित्र के भी मित्र होंगे। इसी तरह एक से कही हुई बात अनेकों में फैल जाती है।

यदि तुम्हारा निर्बल वैरी तुम्हारा मित्र बनना चाहे, तो समझ लेना चाहिये कि वह तुम्हें धोखा देना चाहता है। बुद्धिमानों का कहना है कि जब मित्रों की मित्रता का भरोसा नहीं, तब वैरी की विलइयाँ दण्डवतों का क्या भरोसा?

सदा ऐसा प्रयत्न करो जिससे लोगों में मेल हो। वैरी भी आपस में मित्र बनें।

मित्रों के वैरी को अपना मेली बनाना, अपने मित्रों को कष्ट देना है।

अगर तुम कोई काम करना चाहते हो, तो उसे इस तरह पूरा करो, जिससे उसके पूरा होने में बाधा न पड़े।

शत्रु की दीनता पर दया मत करो। क्योंकि यदि वह सबल हो गया तो वह तुम्हें कभी न छोड़ेगा।

जो दुष्ट को मारता है, वह दुष्ट को ईश्वर के क्रोध से और संसार को उस दुष्ट के अत्याचारों से बचाता है।

वैरी की बातों में कभी मत आओ, पर वह जो कहे उसे सुन अवश्य लो।

तुम्हारे बहुत क्रोध करने से, लोग हक्का बक्का हो कर अपना अपना काम बिगाड़ने लगते हैं और बहुत दयालु होने से, लोगों का डर दूर हो जाता है और काम बिगड़ने लगता है। इसलिये बहुत क्रोध और बहुत दयालु होना—दोनों बातें बुरी हैं।

दाम हीन राजा और विद्या हीन तपस्वी, देश और धर्म्म के घोर शत्रु होते हैं।

नीच प्रकृति वाले को एक बड़े वैरी के हाथ में समझो वह जहाँ जाता है, उसे सदा कष्ट मिलता है।

जब वैरियों के सहायकों में मेल देखो, तब सदा सावधान रहो, पर जब उनमें फूट देखो, तब निश्चिन्त रहो।

जब वैरी का कुछ वश नहीं चलता, तभी वह मेल करता है।

दुःख दायी समाचार तुम मत कहो। क्योंकि उसके सुनने से सुनने वाले को दुःख होगा।

हरएक आदमी को अपनी बुद्धि विशाल और अपना बेटा रूपवान समझ पड़ता है।

यदि चाहें तो दश आदमी एक थाली में भोजन कर सकते हैं, पर दो कुत्ते एक मूर्दे पर लड़ मरते हैं। जो लालची हैं—उन्हें अगर संसार भर की वसुधा मिल जाय, तोभी उन्हें कभी सन्तोष नहीं होता। पर सन्तोषी मनुष्य एक रोटी से सन्तुष्ट हो जाता है। सन्तोषी होना अच्छा है, पर असन्तुष्ट धनवान् होना काम का नहीं।

शक्ति रहते जो भलाई नहीं करता, वह शक्ति न रहने पर दुःख भोगता है।

काम कैसा भी क्यों न हो धीरज रखने से बनता है और उतावली करने से बिगड़ता है।

मूर्ख को वश में करने का उपाय चुप रहना है।

जो अपने से अधिक विद्वान् और बुद्धिमानों से इसलिये वादानुवाद करता है कि और लोग उसे बुद्धिमान् और विद्वान् समझें—उसे लोग मूर्ख समझते हैं।

जो लोग गुण्डों का साथ करते हैं, वे भलाई का सुख नहीं देख सकते।

मनुष्य के छिपे हुए ऐबों को खोलने से उसकी हँसी होती है और खोलने वाले का विश्वास जाता रहता है।

जो विद्या पढ़ कर भी, अच्छे आचरणों से नहीं रहता, उसकी दशा उसी पुरुष जैसी है जो हल चला कर बीज नहीं बोता।

जो बलवानों से विरोध करता है वह अपने प्राणों से हाथ धोता है।

अपने हाथ को सिंह के पंजे में फंसाना और तलवार की धार पर घूँसा मारना, समझदारों का काम नहीं है।

जो आदमी उपदेश नहीं सुनता, वह अपमानित होता है और नीचा देखता है।

बजारू कुत्ते शिकारी कुत्तों को देख कर भौंकते तो हैं, पर पास नहीं आसकते। इसी तरह निर्गुणी, विद्वान् और गुणवानों की निन्दा तो करते हैं, पर सामने नहीं आते।

अगर ईश्वर ने प्राणी मात्र के लिये पेट का जाल न फैलाया होता तो चिड़ीमार चिड़ियों के लिये क्यों जाल फैलाता।

स्त्रियों से सलाह लेकर काम करना और दुष्टों के लिये उदारता हानि-कारक होती है।

हाथ में आये हुए शत्रु का जो नाश नहीं करता, वह अपना वैरी आप ही बनता है।

जो आदमी बुद्धिमान् होकर मूर्खों के साथ झगड़ा करता है उसको चाहिये कि अपनी प्रतिष्ठा से हाथ धो बैठे।

जैसे मृदङ्ग की मीठी ध्वनि नगाड़ों की गड़गड़ाहट में छिप जाती है, उसी तरह बुद्धिमानों का हितोपदेश मूर्खों की मण्डली में, मूर्खों की मूर्खता के नीचे दब जाता है।

कीचड़ में पड़ा हुआ रत्न भी उत्तम है और आकाश में उड़ने वाली धूल भी अधम है।

कस्तूरी अपनी सुगन्ध से आप अपना परिचय देती है।

जिस मनुष्य को वहुत दिनों लों सेकर मित्र बनाया हो उसे ज़रा सी बात के लिये नाराज़ करना ठीक नहीं।

दुष्ट लोग सज्जनों से पार नहीं पाते और राजा कङ्गाल से नहीं जीतता।

जो बात तुम्हे अपने आप मालूम होने वाली है, उसे जानने के लिये उतावली मत करो।

जहाँ बुरे लोगों का जमाव होता हो वहाँ न जाना चाहिये।

जो आदमी साँसारिक दण्डों से भी अपना चाल चलन नहीं सुधारता, उसे यमलोक में दण्ड सहना पड़ता है।

धन पृथिवी खोदने पर और सूम के मरने पर मिलता है।

राजों को वही सीख दे सकता है, जिसे अपने सीस के काटे जाने का डर नहीं होता।

जो ईश्वर का सेवक समझ कर अपनी तथा दूसरों की उन्नति करने में सदा चित्त लगाता है, उसकी परमात्मा सदा सहायता करते हैं।

यदि वहुत दिनों जीने की इच्छा हो तो मौत आने के पहिले हो मरो। अर्थात् किसी अच्छे योगीश्वर को ढूढ़ कर उनसे समाधि लगाना सीखो।

दान देते समय तुम्हारे मन में यह अहङ्कार न उपजना चाहिये—"मैं दान करता हूँ।" दान इस तरह दो कि दान देने वाले और लेने वाले को छोड़ कर, तीसरा आदमी न जाने।

इस संसार में आकर हम जितने पदार्थ भोग रहे हैं वे सब ईश्वर के हैं। क्योंकि यहाँ आते समय न तो कुछ अपने साथ लाये थे और जाते समय न कुछ साथ ही ले जांयगे।

ऊख पेरने से मीठा रस निकलता है। उस रस को औटाने से गुड़ बनता है। और रस से बढ़ कर मीठा होता है। यदि गुड़ को औटावें, तो उससे भी बढ़ कर साफ़ और मीठी चीनी तैयार हो जाती है।

इसी तरह अगर मनुष्य भी धर्म्म रूपी अग्नि में तपाया जाय तो वह धीरे धीरे उत्तम और मूल्यवान् हो जाता है।

अगर तुम किसी के गुण गा कर अपना मुख पवित्र नहीं कर सकते तो दूसरों की निन्दा कर के अपना मुख क्यों अपवित्र करते हो?

अगर कोई अच्छा काम करता हो, तो उसको सराहो, पर यदि तुम से कोई अच्छा काम बन आवे तो दूसरों से अपनी प्रशंसा कराने की इच्छा मत करो।

अपनी प्रशंसा अपने मुख से मत करो; अगर तुम प्रशंसा के योग्य होगे, तो गुणग्राही अपने आप तुम्हारी प्रशंसा करेंगे।

जिन लोगों को हँसते हुए देखते हो उन में बहुतेरों की हंसी में विष मिला होता है क्योंकि कोई कोई तो दूसरों के दुःख और कलङ्क को देख कर हँसते हैं और कोई दूसरों की निन्दा सुन कर या करके हँसते हैं।

इसी तरह जिन लोगों को रोते देखते हो उन में बहुतों के आँसुओं में अमृत मिला हुआ है। क्योंकि कोई तो उनमें पराया दुःख देख कर और कोई अपने किये हुए पापों को याद कर के और कोई भगवान् के प्रेम में पग कर आँसू बहाते हैं।

यदि पाप के लिये तुम परमेश्वर की निगाह में अपराधी ठहराये गये हो, तो साधुओं की शरण में जाओ। वे पाप के नाश का सहज उपाय बतला देंगे।

भगवान् के प्रेम में डूब कर जो गद्गद् होकर अश्रुधारा बहा रहे हैं, उन्हें प्रलय काल की प्रचण्ड अग्नि का कुछ भी भय नहीं है, क्योंकि वे सदा ठण्डे जल से ठण्डे रहते हैं।

यदि सुखी बनना चाहते हो तो पर-गुणग्राही बनो। यदि कोई अच्छा काम करे, किसी की उन्नति हो, किसी अच्छे आचरण वाले को देखो, तो उसे प्रेम की दृष्टि से देख कर, सज्जन कहलाओ। ऐसे आदमियों के साथ ईर्ष्या द्वेष मत करो।

यदि हवा अनुकूल चलती हो तो पाल तान देने से हमारी नाव पानी चीरती हुई आगे बढ़ती चली जाती है। वैसे ही भगवान् का कृपा रूपी पवन चल रहा है। हे मनुष्यो! फिर तुम क्यों प्रेम रूपी पाल को तान कर अपनी जीवन रूपी नाव को नहीं चलाते?

जिस तरह अनार जब पक जाता है, तब उसका छिलका आप से आप फट जाता है और अपने रसीले और मीठे दानों से वह लोगों को तृप्त करता है, उसी तरह किसी भोगी को जब कोई सिद्धि मिल जाती है, तब उसके प्रेम रूपी अमृत से सने हुए वचन संसार को प्रसन्न किये बिना नहीं रहते।

जैसे पेड़ का जौन सा फल पक जाता है, वह पेड़ को छोड़ कर, उसके नीचे की भूमि पर गिर पड़ता है। वैसे ही जो लोग प्रेम के आनन्द में डूब जाते हैं, वे ससार रूपी पेड़ के पके हुए फल हैं। इन्होंने इस जगत रूपी पेड़ का आश्रय छोड़ दिया है और जगदाश्रय (भगवान्) का आश्रय पकड़ा है।

कलकत्ते से समुद्र पास है। इस लिये वहाँ की गङ्गा जी में ज्वार भाटा आता जाता है और बीच बीच में समुद्र की लहरों का शब्द भी सुनाई पड़ता है। पर प्रयाग से समुद्र बहुत दूर है। इस लिये प्रयाग की गङ्गा में ज्वार की बाढ़ नहीं आती।

इसी तरह जिस मनुष्य की आत्मा ने भोग बल से, भगवान् के प्रबल तेज को अपने हृदय में बिठा लिया है। वह पुण्यात्मा आनन्द की लहरों में हिड़ोरता रहता है। पर सांसारिक झंझटों में फँसे हुए जीवों में—जिनसे ईश्वर दूर है—यह बात नहीं पायी जाती।

सिंह, रीछ, साँप सुअर आदि मनुष्यों को मार डालने वाले जानवरों से भरा पूरा ऐसा कोई वन नहीं है—जहाँ तपस्वी निडर हो कर न जा सकें। पर भोग में लिप्त धनिकों के पास जाते हुए उन्हें भी डर सा लगता है। विषयी लोग सिंह, सर्पादि से भी अधिक दुःखदायी हुआ करते हैं।

भगवान् के भक्तों को इस संसार में तरह तरह के दुःख और कष्टों का सामना करना पडता है। पर भगवद्भक्तों को डरना न चाहिये। क्योंकि भक्त-वत्सल भगवान् अपने भक्तों के सारे दुःख और क्लेश दूर कर देते हैं।

सूर्य्य अपनी किरणों से समुद्र के जल को भाफ बना कर आकाश की ओर खींचते हैं। वह भाफ एकत्र हो, ऊपर पहुँच कर, गम्भीर गर्जन करने लगती है और घनघोर घटा बन कर छा जाती है। उस समय देखने वालों को सूर्य्य नहीं दिखलाई देते और वे समझते हैं कि बादलों ने सूर्य्य को छिपा लिया। पर मूर्ख यह नहीं जानते कि सूर्य्य का प्रचण्ड तेज क्षण भर में मेघ मंडल को हटा देगा और उनकी निर्मल किरणें, फिर चमक उठेंगी और संसार का भला करेंगी।

ऊपर दिये हुए उदाहरण की तरह हे सज्जनो! तुमने जिन्हें स्नेह के वश में हो कर उपदेश दिया है, सुमार्ग में लगाया है—जान पड़ता है, वे अधिक ऊँचे न होंगे। क्योंकि वे तो थोड़ी ही उन्नति के घमण्ड में आ कर, मूर्खों के बीच बातों का जाल बिछा कर, तुम्हारी जड़ काटने लगते हैं। वे जिस तेज से पुष्ट हुए हैं, उसी को छिपाना चाहते हैं।

किन्तु हा! देख से मूढ़ जन आनन्दमय राज्य से गिर कर सांसारिक लोगों की पाद-सेवा में लग जाते हैं। पर हे सज्जनो! तुम ज्यों के त्यों बने रहते हो। जैसे सूर्य्य का तेज बादलों के ऊपर सदा चमका करता है, वैसे ही तुम्हारा तेज भी तुम्हारे विरोधियों की दृष्टि के परे, सदा बना रहता है।

एक राजा था। वह यह समझ कर कि मेरे भाण्डार में असंख्य रुपये हैं, विचार कर रहा था कि हम बड़े धनी हैं। हमें किसी चीज का टोटा नहीं है। एक दिन वह आखेट को गया। वहाँ एक हिरन के पीछे दौड़ते दौड़ते—बियाबान वन में जा निकला। सन्ध्या हो गयी थी—इस लिये अंधेरे में वह रास्ता भूल गया। हार कर उसे एक पेड़ के नीचे बैठ जाना पड़ा। भूख लगने पर उसे कड़ुवे कसैले फल खा कर पेट भरना पड़ा। जैसे तैसे रात बीती।

तब उसकी आँखे खुलीं वह मन ही मन अपने को धिक्कारने लगा। वह कहने लगा अभिमान करना वृथा है। धन जब तक पास रहता है तभी तक काम आता है। आज संख्या धन का धनी होकर भी मुझे कङ्गालों की तरह समय काटना पड़ा। हे पाठको! यह अभिमान करना वृथा है कि हमारे शास्त्रों में समस्त विद्याएँ, सकल नीति और सम्पूर्ण धर्म्म भरा पड़ा है।

जब तक तुम उसमें भली भाँति अभ्यास न कर लोगे; तब तक उनसे लाभ उठाने की आशा मत करो। इस लिये तुम जहाँ जाओ, जिस दशा में हो, अपनी विद्या, नीति एवम् धर्म्म को अपने पास (कण्ठस्थ और हृदयस्थ) रखो।

अगर तुम दीन न बनोगे तो दीन दयालु अथवा दीनबन्धु के दयापात्र न हो सकोगे। जिनके सामने सूर्य्य मण्डल एक क्षुद्र घेरा है, और यह पृथिवी बालू का एक तुच्छ कनका (कण) है; उनके आगे; हे जीव! तू किस बिरते पर सिर उठाता है, किस के भरोसे "मैं; मैं" करता है। यह तो सोच तू क्या है? और यहाँ तेरा क्या है? जिसके बल पर तू इतना कूदता फाँदता है।

ध्यान से विचार कर देख; जो कुछ हमें दिखलाई पड़ता है; सब उन्हीं का तो है। तेरा कुछ भी नहीं है। यदि कुछ है तौ केवल उस परमात्मा की कृपा का सहारा और कुछ नहीं। तू तो एक निरा तुच्छ और दीन जीव है। इस तरह सोचने विचारने से पलक मारते सारा अहङ्कार और घमण्ड दूर हो जाता है।

इस लिये यही उचित है कि दीनता के साथ उनके आगे रोओ। वे दर्शन देंगे। मनोकामना पूरी करेंगे और यह मानव-जन्म सुफल कर देंगे।

५—नीति का अर्थ और फल

जिस कौशल से कोई काम चलाया जाता है और उसका फल प्राप्त किया जाता है उस कौशल का नाम नीति है।

जिस उपाय से राजा लोग राज काज नियम के साथ निभाते हैं, उस 'उपाय' को 'राजनीति' कहते हैं।

इसी तरह से जिस रीति से समाज के काम काज उत्तमता के साथ चलाये जाते हैं उस 'रीति' को समाज-नीति कहते हैं।

जिस पद्धति से घर के धन्धे अच्छी तरह चल सकें उस 'पद्धति' का नाम 'गार्हस्थ-नीति' है।

जिस विधि से मनुष्य जाति अपने कर्त्तव्यों का साधन कर के जीवन को शुद्ध और पवित्र करके भगवान् के चरण कमलों तक पहुँचने के योग्य बन सके, उस 'विधि' को, धर्म्म-नीति कहते हैं।

जिस का नाम 'नीति' है वह दो तरह की होती है। १—नीति और २—सुनीति।

'नीति' तो वह कहाती है जिससे कोई काम पूरा होता है। चोरी करना, झूठ बोलना, बुरे काम करना आदि नीति के अङ्ग

हैं। पर जिस नीति से इन कामों की सिद्धि होगी उस नीति को दुर्नीति कहेंगे।

'सुनीति' वह है जिसके सहारे मनुष्य अच्छे मार्ग पर चलते हैं और उत्तम फल के भागी होते हैं। इस 'सुनीति' की जड़ उत्तम शिक्षा है।

सुनीति के फल से, हम जिस काम को उठावेंगे—उसे सहज रीति से, भली भाँति कर लेंगे। उसके द्वारा अच्छा फल भी मिलेगा।

यदि सर्वसाधारण लोगों में बहुतायत से सुनीति की जड़ सुशिक्षा का प्रचार हो, तो आपस का झगड़ा विरोध, असभ्यता, मूर्खता, धृष्टता, धूर्त्तता और छल कपट आदि सारे दोष दूर हो जाँय।

सुशिक्षा के प्रचार से विचारालयों (अदालतों) का काम हलका हो जाता है। झूठे अभियोगों की संख्या घट जाती है। साथ ही जो धन और समय झूठे अभियोगों (मुक़द्दमों) के चलाने में लगा करता है वह बच जाता है।

निबलों पर अत्याचार, मदिरा का पीना, आदि महापापों की संख्या घटाने का मुख्य उपाय सुनीति की जड़ 'सुशिक्षा' का प्रचार है।

यदि चाहते हो कि समाज में दुःख दरिद्र न फैले, साधारण प्रभुत्व (मालकाना) के लिये ख़ून ख़राबी न हो, चारों ओर सुख और शान्ति बनी रहे, तो सुशिक्षा का पल्ला पकड़ो।

जैसे तेज़ बहने वाली और गहरी नदी को पार करने के लिये पुल की आवश्यकता होती है, वैसे ही इस संसार रूपी भयानक नदी के पार जाने के लिये, सुनीति रूपी दृढ़ पुल की

शरण लेनी चाहिये। जो इस पुल के नीचे गिर जाता है वह दुःख क्लेश में डूब कर नष्ट हो जाता है।

सुनीति आदमियों की मानी हुई वस्तु नहीं है। ईश्वर की आज्ञा है कि इस दुनिया के प्राणी नियम-पूर्वक चलें, जिससे उनके जीवन सफल हों।

सूर्य्य और चन्द्रमा पूर्व ही में उदय होते हैं और पश्चिम में अस्त होते हैं। इस नियम के विरुद्ध न कभी हुआ और न होगा। यदि हो तो उसे अमङ्गल की सूचना समझनी चाहिये।

आकाश मण्डल के ग्रह नक्षत्रादि भी एक नियम के आश्रित रहते हैं। ये नियम ईश्वर के बनाये हुए हैं। इन्हें कोई तोड़ नहीं सकता।

इस ईश्वर की मर्य्यादा के टूटने से संसार का काम चलना असम्भव हो जाता है।

जैसे सृष्टि के अन्य पदार्थ एक न एक नियम के आधीन हैं वैसे ही यदि मनुष्य-जीवन का हरएक काम किसी नियम या नीति के अनुकूल रहे, तो कभी किसी दुःख का नाम न सुन पड़े। क्योंकि परमेश्वर की आज्ञा या इच्छा यही है कि प्राणी मात्र सुनीति की जड़-सुशिक्षा को सीख कर, आनन्द से जीवन बितावें।

सब पदों से ऊँचा पद, भगवान् के चरण-सेवक बनना है। यह पद मनुष्य को तभी मिलता है जब, उस पर भगवान् की कृपा होती है और भगवान की कृपा जीव पर तब होती है, जब वह सुनीति के पथ पर चलता है भगवान की भक्ति में डूबता है और उनकी शरण में जाता है।
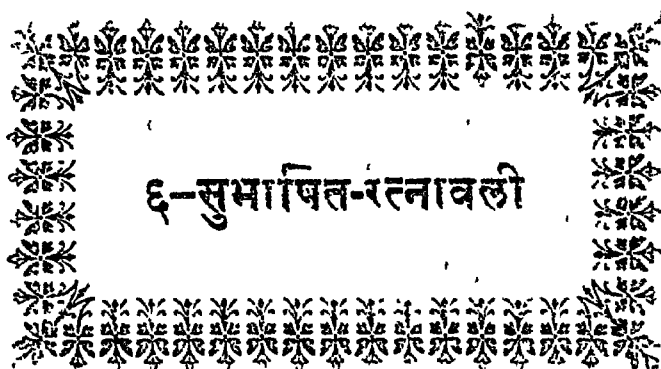
६—सुभाषित-रत्नावली

अब हम तुम्हें धर्म्म का तत्व सुनाते हैं। उसे सुनो और सुन कर उसके अनुसार काम करो। धर्म्म का निचोड़ यह है कि जिस व्यवहार का करना तुम को बुरा मालूम दे, उसे दूसरों के साथ भी मत करो।

जिसके दिन विना धर्म्म कर्म्म के बीतते हैं, वह लुहार की धोंकनी की तरह सांस तो लेता है, पर जीवित नहीं है।

चलते फिरते उठते बैठते, सोते जागते, जो मनुष्य प्राणियों का उपकार नहीं करता, उसका जन्म पशुओं से भी गया बीता है।

जो मनुष्य युवावस्था में शान्त और इन्द्रियों को जीतने वाला है, वही शान्त और जितेन्द्रिय है। बुढ़ापे में जब सारा शरीर शिथिल हो जाता है, तब तो सभी शान्त और जितेन्द्रिय हो जाते हैं।

किसी को हिंसा न करना, सच बोलना, सब प्राणियों पर दया करना, अपनी इन्द्रियों को अपने हाथ में करना, सत्पात्रों को यथाशक्ति दान देना, ये गृहस्थों के धर्म्म हैं।

अपने साथ भलाई करने वाले के साथ भलाई करना—यह बनियों जैसे व्यवहार है, पर जो आदमी भलाई का बदला भलाई से नहीं देता—वह मनुष्य नहीं है पशु है।

मन वचन और कर्म्म द्वारा किसी जीव के साथ द्वेष न करना, सब पर अनुग्रह रखना और सहायता करना—ये बातें शीलवान् लोगों के नित्य करने की हैं।

मैले कपड़े पहनने वाले को मैली कुचैली जगह पर बैठने में सङ्कोच नहीं रहता। वह जहाँ चाहता है वहीं बैठ जाता है। इसी तरह जिसका चाल चलन खोटा है, उसे कोई काम अनकरना नहीं है वह जो चाहे सो कर सकता है।

विदेश में विद्या धन है काम काज के समय बुद्धि धन है, परलोक में धर्म्म धन है और शील सब जगह धन का काम देता है।

निर्जन और भयङ्कर वन में; भूख प्यास से मर जाना अच्छा है, तिनकों से ढके हुए और साँपों से भरे गढ़े में गिर कर प्राण दे देना अच्छा है और गहरे जल के दह में डूब कर, मर जाना भी अच्छा है, पर पढ़े लिखे कुलीन का शील छोड़ना अच्छा नहीं है।

यदि अच्छों के पीछे पीछे तुम जल्दी जल्दी नहीं चल सकते, तो धीरे धीरे चलो यदि अच्छों के मार्ग पर धीरे धीरे चले चलोगे, तो तुम्हें किसी तरह का कष्ट न होगा।

आलसी पराक्रम-हीन, अहङ्कारी और झूठ निन्दा से डरने वाले लोगों के मनोरथ पूरे नहीं होते।

जो आदमी आये हुए क्रोध को रोक लेता है—उसी पर लक्ष्मी महारानी सदा प्रसन्न रहती हैं। अर्थात् उसे धन का टोटा नहीं रहता।

होने वाले कामों का पहले ही से उचित प्रबन्ध करने वाले, सावधानी से काम करने वाले, शान्त, भली भाँति सोच विचार कर काम करने वाले और हानि होने पर भी धीरज न छोड़ने वाले मनुष्य ही धन पैदा करते हैं।

अगर किसी शत्रु को जीतना है तो शरीर के घोर शत्रु—कान, नाक, आँख आदि इन्द्रियों को जीतो। जिसने इनको जीत लिया है, उसके लिये इस संसार में जीतने के लिये और कोई शत्रु नहीं बचा।

अगर तुम सारे संसार को अपने वश में करना चाहते हो, तो दूसरों की निन्दा में लगी हुई वाणी (जिह्वा) को अपने वश में करो। अर्थात् किसी की निन्दा मत करो।

जिसमें विनय नहीं है अथवा जो दुर्विनीत है; उसका सुहृद् भी उसका शत्रु हो जाता है। जैसे अन्न का खाना बल-वर्द्धक होने पर भी, यदि अजीर्ण (कुपच) में खाया जाय—तो वह अन्न शरीर का मित्र होने पर भी उसका शत्रु बन कर उसे नष्ट कर देता है।

बली से वैर कर के जो अपनी रक्षा भली भाँति नहीं करते उनको नाना प्रकार के अनर्थों का सामना करना पड़ता है।

जो काम करो वह दिखावट के लिये आडम्बर बनाकर मत करो। क्योंकि ठण्ठ गऊ के गले में तुम भले ही घण्टियाँ लटका दो—तो भी उसे कोई नहीं ख़रीदेगा।

जो अज्ञानी हैं, वे भी धीरे धीरे ज्ञान पासकते हैं। जैसे धीरे धीरे फोड़ने से पहाड़ फूट जाते हैं और बड़े बड़े पेड़ घुन जाते हैं। ये सब अभ्यास की महिमा है।

चलती हुई चींटी हज़ारों कोस जा सकती है और न चलने वाले गरुड़ एक पग भी नहीं जा सकते।

विपत्ति आने के पहिले ही उसके रोकने का उपाय करना चाहिये। क्योंकि घर में आग लग जाने पर कुआँ खोदने से कुछ भी फल नहीं होता।

सब नातेदारों में सुहृद बन्धु ही सब से बढ़ कर हैं। जो सुहृद आपत्ति में काम आते हैं—सच्चे सुहृद या बन्धु वे ही हैं।

बहुत नम्र होने से अपमान होता है और बहुत क्रोधी होने से बहुत से शत्रु हो जाते हैं। इसलिये मनुष्य को न तो अति नम्र होना चाहिये और न अति क्रोधी।

लोगों को वश में करने के लिये तीन बातों की आवश्यकता है। १—देना, २—मित्रता और ३—मीठी बोली।

जाति वालों के साथ, भोजन करो, बातें करो, उसके दुःख में दुःखी और सुख में सुखी हो, पर उन के साथ विरोध भूल कर भी न करो।

जाति बिरादरी वालों के साथ, बातचीत करते समय गाली-गलौज और क्रोध उपजाने वाली बातें कभी न करो।

भले ही अपना नातेदार न हो—वह दूसरा ही हो और अपना भला करे, तो वही अपना नातेदार है। पर नातेदार हो और अपना अहितकारी हो तो वह अपना नातेदार नहीं है। जैसे देह में उत्पन्न रोग अपना नहीं, पर वन में उत्पन्न हुई दवाई अपनी होती है।

घर में उत्पन्न चुहिया जो कपड़े काटती और नाज खाती है अपनी नहीं होती। उसको नष्ट करने के लिये बाहर से लालच दिखला कर, बिल्ली बुलाई जाती है।

अच्छों ही के साथ मित्रता और नातेदारी करनी चाहिये। बुरे लोगों के साथ किसी तरह का सम्बन्ध न रखना चाहिये।

मनुष्यों के गुणों पर इतना ध्यान न देना चाहिये जितना उनके स्वभाव पर। क्योंकि स्वभाव गुणों को दबा लेता है।

मनुष्य को हरएक काम करने के पूर्व यह सोचना चाहिये कि इस काम के करने में हानि होगी कि लाभ। यह सोच कर काम में हाथ डालना चाहिये।

भाग्य में नहीं लिखा—यह सोच कर उद्योग को न छोड़ना चाहिये। भाग्य में लिखा है पर यदि तिलों से तेल निकालने का उद्योग न किया जाय तो तेल नहीं निकल सकता।

जिस समाज में पाण्डित्य का अभिमान रखने वाले बहुत से नेता (अगुआ) होते हैं; वह समाज शीघ्र ही नष्ट होता है।

बाप के मरने पर बड़े भाई को पिता के पद पर समझना चाहिये। छोटा भाई बड़े को अपना पालन करने वाला समझे और बड़ा भाई छोटे का पालन करे।

उस गौ का क्या किया जाय जो न तो दूध देती और न गाभिन ही है। इसी तरह उस पुत्र से क्या लाभ जो न तो विद्वान् है न धार्मिक ही है।

जो लड़के पैदा होते ही मर जाते हैं, या पैदा ही नहीं होते—वे उस बहुत दिन लों जीने वाले मूर्ख पुत्र से कहीं अच्छे हैं। क्योंकि पहले दोनों तरह के पुत्र तो बाप माँ को थोड़ी ही देर के लिये दुःखदायी होते हैं, पर मूर्ख पुत्र तो जब तक जीता है, तब तक माता पिता को दुःख देता है।

जो पराई निन्दा में पण्डित हैं, अपने काम काज करने में ढीले हैं और गुणियों के जो वैरी हैं, वे सदा विपत्तियाँ झेला ही करते हैं।

क़र्ज़ा (ऋण) अग्नि, और शत्रु को कभी न बचा रखे, क्योंकि इनके बच जाने से इनके बार बार बढ़ने का भय रहता है।

वश में आने पर शत्रु को कभी न छोड़े, शत्रु के साथ अच्छा व्यवहार यही है कि उसका नाश कर दे।

स्त्री वही है; जो सदा मीठे बोल बोलती है, पुत्र वही है; जिसका चाल चलन अच्छा है, मित्र वही है; जिस पर अपना पूरा भरोसा है और अपना घर वही है; जहाँ अपनी जीविका है।

जो भलों की बातों को न मान कर बुरों की बातों पर चलता है; वह बहुत जल्द अपने पद से गिरता है।

अपकार (बुराई) करना तो शत्रु का लक्षण है और उपकार (भलाई) करना मित्र का लक्षण है।

पण्डितों को चाहिये कि वे हर एक काम में हाथ डालने के पहिले, देश, काल, पात्र, आय, व्यय (आमदनी ; खर्च) अपना बल, और अपने मित्रों का विचार कर लिया करें।

दूसरों की निन्दा में तो लोग सदा निपुणहोते ही हैं, पर अपनी बुराइयों और दुर्गुणों को जानते हुए भी वे उन्हें दूर करने का यत्न नहीं करते।

पहले तो सभा में जावे ही नहीं, और जाय तो यथार्थ (ठीक ठीक) बात कहे। जान कर ठीक न कहने वाले और उलटी बात कहने वाले—दोनों ही पाप के भागी होते हैं।

इसलिये सभा में जाने वाले को राग द्वेष छोड़ कर, इस तरह की बातें कहनी चाहिये जिससे उसे नरक में न गिरना पड़े।

चापलूसी करने वाले स्वार्थी लोगों की कमी नहीं है। पर अप्रिय और सच्च बोलने वाले लोग विरले ही हुआ करते हैं।

होशियार को धन, पथ्य से रहने वाले को आरोग्यता, आरोग्य को सुख, अभ्यास करने वाले को विद्या और विनीत (नम्र) को यश और धर्म मिलते हैं।

जब मीठी बातों से काम न चले, तब कठोरता से काम लेना चाहिये। क्योंकि कड़का हुआ पित्त यदि चीनी के शर्बत से शान्त हो जाय, तो फिर कड़ुआ काढ़ा पिलाने की क्या आवश्यकता है?

जो न तो शूर है, न दानी है, न धनी है और न परोपकारी है, उसका जन्म कीड़े मकोड़े जैसा है।

जो सब जगह जा आ सकता है, उसे अपने देश के अनुराग में पड़ कर, क्यों सड़ना चाहिये, जो कापुरुष (बुरे आदमी) होते हैं वे ही बाप के खारी कुएँ का खारी पानी पिया करते हैं।

मदिरा पीना, बहुत से लोगों को बैरी बनाना, पति और स्त्री में मन फटौअल, जाति बिरादरी में भेद, राजा को मार डालने का यत्न, ये सभी बातें बहुत बुरी हैं। इन्हें भूल कर भी न करनी चाहिये।

वह सभा नहीं जिसमें बड़े बूढ़े न हों। वे बड़े बूढ़े नहीं जो धर्म्म की बातें न कहें। वह धर्म्म नहीं, जिसमें सत्य न हो और वह सत्य नहीं जिसमें छल कपट मिला हो।

जवानी में ऐसे काम करने चाहिये, जिनसे बुढ़ापे में आराम मिले। और जन्म भर ऐसे काम करने चाहिये जिन से मरने पर सुख मिले।

क्रोध के शान्ति से, बुरे को भलाई से, लोभी (लालची) को धन दे कर और झूठे को सत्य से जीते।

जो बड़े बूढ़ों को प्रणाम किया करता है उसकी कीर्त्ति, आयु, यश और बल बढ़ता है।

जिसने देकर मित्र को और युद्ध में अपने वैरी को और खिला पिला कर स्त्री को, जीत लिया है—उसीका जन्म लेना सुफल है।

नीचे लिखी सात बातें विद्यार्थियों के लिये हानि कारक हैं। इसलिये इन्हें छोड़ देना चाहिये। १—आलस, २—नशा का खाना या पीना, ३—मूढ़ता, ४—चपलता, ५—व्यर्थ की बकबक, ६—अनम्रता, ७—अभिमान।

सुख चाहने वालों को विद्या नहीं आती और विद्या चाहने वालों को सुख नहीं मिलता। इसलिये सुख चाहने वाले विद्या को और विद्यार्थी सुख को छोड़ दे।

काम, क्रोध लोभ और मोह में पड़ कर, प्राण गवांदे, पर धर्म्म को न छोड़े।

मरने पर धन दौलत दूसरे लोग भोगते हैं। शरीर के मांस को या तो कौए खाते हैं—या शरीर आग में जला दिया जाता है। जीव के साथ पाप और पुण्य दो ही—चीजें जाया करती हैं।

जो अपने से अधिक बुद्धिवाले, अधिक धर्म्मात्मा, भाईबन्द, अधिक विद्यावाले, उम्र में बड़े लोगों को पूज कर और इन्हें प्रसन्न करके किसी काम को करता है, उसके सारे काम पूरे होते हैं।
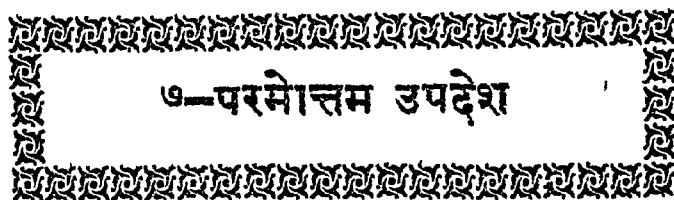
७—परमोत्तम उपदेश

चौपाई

सोचिय विप्र जो वेद विहीना।
तजि निज धर्म्म विषय-लय-लीना॥
सोचिय नृपति जो नीति न जाना।
जेहि न प्रजा-प्रिय प्रान समाना॥
सोचिय वैश्य कृपन धनवानू।
जो न अतिथि सिवभक्ति सुजानू॥
सोचिय सूद्र विप्र अपमानी।
मुखर मान-प्रिय ज्ञान गुमानी॥
सोचिय पुनि पति-वंचक नारी।
कुटिल कलह-प्रिय इच्छा-चारी॥
सोचिय वटु निज व्रत परिहरई।
जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥

दोहा

सोचिय गृही जो मोह वस, करै कर्मपथ त्याग।
सोचिय यती प्रपंच रत, विगत विवेक बिराग॥

चौपाई

वैखानस सोइ सोचन जोगू।
तप विहाय जेहि भावै भोगू॥
सोचिय पिसुन अकारण क्रोधी।
जननि जनक गुरु बन्धु विरोधी॥
सब विधि सोचिय पर-अपकारी।
निज तन पोषक निर्दय भारी॥
सोचनीय सब ही विधि सोई।
जो न छाँड़ि छल हरि जन होई॥

—गुसाइँ तुलसीदासजी।

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.